www.hindilekhak.com

Facebook | Instagram | YouTube
परिवार के अन्य मंच

वेब पत्रिका

अनुभव

वर्ष ९ | अंक - अक्टूबर २०२५

**साहित्य का स्वाभिमान –
हिंदी का सम्मान**

फरवरी 2016 में बोया गया यह साहित्यिक बीज,
2021 से थोड़े समय विश्राम पर रहा,
और अब पुनः नवपल्लव लेकर आपके समक्ष है।

समय बदलता है, यादें नहीं।

इस अंक में संजोई गई यादें आपके दिल और दिमाग में बसी रहेंगी,
और पुराने पलों की मिठास व भावनाओं को फिर से जगाएँगी।

संपादक एवं प्रकाशक – नवल किशोर
मुख्य संपादक – मनिक

"अनुभव पत्रिका" हिन्दी लेखक परिवार की एक इकाई है।
पत्रिका का उद्देश्य किसी की भावना को ठेस पहुँचाना नहीं है। यदि जाने–अनजाने में कोई गलती हुई हो, तो उसके लिए हम क्षमा प्रकट करते हैं।

पूर्वानुमति के बिना पत्रिका की किसी भी रचना का व्यवसायिक अथवा किसी भी रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता।
पत्रिका अनेक लेखकों की रचनाओं का संकलन है; लेखक अपनी रचना के लिए स्वयं उत्तरदायी हैं और उनके अधिकार सुरक्षित हैं।

पत्रिका में प्रयोग की गई तस्वीरें इंटरनेट से ली गईं या AI द्वारा उत्पन्न की गईं हैं और इनका उद्देश्य केवल प्रतीकात्मक है।

सर्वाधिकार सुरक्षित © २०२५ | hindilekhak.com

संपादकीय

प्रिय पाठकों,
नमस्कार।

समय बीत जाता है, पर जो बीतकर भी मन में रह जाता है — वही स्मृति कहलाता है।

वर्षों, ऋतुओं और परिस्थितियों की परतों के बीच कुछ चेहरे, कुछ स्वर, कुछ घटनाएँ यूँ ठहर जाती हैं जैसे किसी शांत झील में चाँद की परछाईं — न मिटने वाली, न पूरी पकड़ी जाने वाली।

“अनुभव पत्रिका” का यह स्मृति विशेषांक उन सभी क्षणों का संग्रह है, जिन्हें हमने जिया भी है और आज फिर से जीना चाहा है। यह केवल अतीत का पुनर्स्मरण नहीं, बल्कि जीवन के उस अमर प्रवाह का बोध है जो हर अनुभव से हमें थोड़ा-थोड़ा परिष्कृत करता चलता है।

इस अंक में प्रस्तुत कविताएँ, कहानियाँ और संस्मरण — केवल रचनाएँ नहीं, आत्मा के अंश हैं। कहीं किसी के शब्दों में खोया हुआ स्नेह है, कहीं किसी के मौन में गहराई, और कहीं उस पीड़ा की अनुगूंज़ है जो समय के साथ भी मद्धिम नहीं पड़ी।

हर रचना हमें यह स्मरण कराती है कि मनुष्य भले ही वर्तमान में जीता हो, पर उसकी चेतना का बड़ा हिस्सा स्मृतियों में ही निवास करता है।

स्मृतियाँ कभी आंसू बनती हैं, कभी प्रेरणा; कभी वे हृदय को बोझिल करती हैं, तो कभी जीवन को दिशा देती हैं। हमारे लेखक साथियों ने इस विविधता को शब्दों में पिरोकर एक भाव-संपन्न पुष्पगुच्छ तैयार किया है। उनकी लेखनी ने समय को स्थिर करने का अद्भुत प्रयास किया है — ताकि हम कुछ क्षण ठहरकर अपने भीतर
झाँक सकें।

इस विशेषांक की तैयारी के दौरान अनेक संवेदनशील आत्माएँ जुड़ीं — किसी ने अपनी पुरानी डायरी खोली, किसी ने भूली कविताएँ भेजीं, किसी ने उन पलों को शब्द दिए जिन्हें अब तक केवल मन में सँजोया था।
उन सभी का हृदय से आभार, जिनकी स्मृतियों ने इस अंक को गरिमा और गहराई प्रदान की।
हमारा उद्देश्य यही है कि “अनुभव” केवल एक पत्रिका न रहे, बल्कि एक अनुभूति बन जाए —
जहाँ हर पाठक को अपने अतीत की गूँज और अपने वर्तमान की दिशा, दोनों मिल सकें।

आइए, इस स्मृति यात्रा में साथ चलें

उन शब्दों, चित्रों और संवेदनाओं के बीच, जहाँ हर विराम भी बोलता है,
और हर स्मृति, एक दीप की तरह मन के कोने को आलोकित करती है।

सादर,
नवल किशोर
संपादक, अनुभव पत्रिका

भूमिका

अनुभव की वापसी: जीवन और विचारों का नया संचार

'अनुभव पत्रिका' का यह नया अंक आपके सामने प्रस्तुत करते हुए हमारा हृदय आनंद और उत्साह से भरा हुआ है। 'अनुभव' केवल एक पत्रिका नहीं, बल्कि यह उन भावनाओं, विचारों और अनुभवों का संगम है, जो हमें एक-दूसरे के करीब लाता है। कुछ समय के लिए यह यात्रा भले ही रुकी रही, लेकिन आज, नए जोश और डिजिटल युग के साथ तालमेल बिठाते हुए, हम एक बार फिर आपके सामने हैं — पहले से कहीं अधिक सशक्त और प्रेरणादायी।

डिजिटल युग में 'अनुभव' की प्रासंगिकता

जब हमने इस ई-पत्रिका को पुनर्जनन देने का निर्णय लिया, तो एक प्रश्न मन में उठा;
क्या आज के तेज़-रफ्तार डिजिटल युग में, जहाँ सूचनाओं का सैलाब है, 'अनुभव' की सौम्य, गहरी और आत्मीय आवाज़ को स्थान मिलेगा? लेकिन आपके अपार प्रेम, लेखकों की रचनात्मक ऊर्जा और पाठकों के विश्वास ने इस शंका को पूरी तरह निर्मूल कर दिया।

प्रिय पाठकों, सहयोगियों और शुभचिंतकों

आइए, मिलकर अनुभवों के इस पुल को और सशक्त बनाएँ, जहाँ विचार, भावनाएँ और रचनाएँ एक-दूसरे से मिलें और जीवन को और सार्थक बनाएँ।

सादर,
मनिक
मुख्य संपादक, अनुभव पत्रिका

'अनुभव पत्रिका' और 'हिंदी लेखक परिवार' का यह प्रयास निस्वार्थ साहित्यिक समर्पण से संचालित है।
यदि आप चाहें, तो इस कार्य में अपनी स्वैच्छिक सहयोग राशि देकर सहभागी बन सकते हैं।
आपका सहयोग पत्रिका के संकलन, संपादन, डिज़ाइन और प्रसार में सहायक होगा।

संपर्क:- patrika@hindilekhak.com
UPI ID:- anubhavpatrika@airtel
संदेश में लिखें:- "पत्रिका सहयोग"

अनुक्रमणिका

08	सरस्वती के चरणों में	डा. रंजना दुबे
09	सब्जीवाला	गोदाम्बरी नेगी 'पुंडरीक'
10	पश्चाताप जिसने आत्मविश्वास बढ़ाया	हेमचंद्र सकलानी
11	यह मेरी जन्मभूमि है (ठूँसरा)	गुरुदीन वर्मा
12	तीन-तीन चोरियां	डॉ. अशोक गुजराती
14	लौट आती हैं स्मृतियां	लव कुमार
15	दो किस्त	निधि "मान सिंह"
16	लौटते हुए	लव कुमार
16	गांव के घर	व्यग्र पाण्डे
17	मांडना: भारत की सांस्कृतिक धरोहर!	डॉ. वर्षा महेश
18	साहित्य और कवियों की स्वतंत्रता आंदोलन में भूमिका	हेमचंद्र सकलानी
20	लक्ष्मी सबको प्यारी है	डॉ. वर्षा महेश
21	यादें छेड़तीं	रमेश कुमार सोनी
21	वो मुश्किलात किसी भी सफ़र के देखते हैं	भानु झा
22	अनुभव की थाती	मुकेश कुमार बिस्सा
22	बड़े दानवीर कहलवायेंगें	वीरेन्द्र कौशल
23	गुब्बारे वाली दिवाली	संजय सिंह चौहान
23	बापू तेरे तीन बन्दर	वीरेन्द्र कौशल
24	देहरी पर सांझ	मधुकर वनमाली
24	किडनी दान ने बदला जीवन	संजय वर्मा "दृष्टि"
25	फुहार	विजयानन्द विजय
26	ज़िंदगी दुबारा	आशा भाटिया
27	कैनवास	अश्विनी देशपांडे
27	वो आने से रह गए	भानु झा
27	जब भी स्मृतियों में आऊ	सुनील गज्जाणी
28	हक	विधि जैन
29	वह बेंच	डॉ. नीना छिब्बर
30	दिवाली का दिवालियापन	डॉ. मुकेश असीमित
31	जनता रोए, संसद बोले	इच्छा उपाध्याय
32	खुशियों भरी दिवाली	रेणु लेसी फ्रांसिस
34	चाय-पानी	अर्विना गहलोत

35	मात पिता को देवता जानो	डॉ. गोपाल प्रसाद ‘निर्दोष’
36	मित्रता दिवस	श्वेता विशाल झा
37	राहत इंदौरी : आवाम का शायर	डॉ. कविता नन्दन
38	कोई नहीं सुनता	अश्वनी राघव, रामेंदु
39	सर्द सुबह की स्मृतियाँ	मनु वाशिष्ठ
39	स्मृतियों का आभार	पल्लवी दीपक म्हात्रे
39	शुभ	पवित्रा अग्रवाल
40	ज़ीरो नंबर आया है	सरिता सुराणा
41	रेखा के पार	पवित्रा अग्रवाल
43	घर ना तोड़ो	पवित्रा अग्रवाल
44	उस रात का डर	कविता नन्दिनी
45	यह कैसा श्राद्ध!	मंजुला भूतड़ा
46	याद एक दुर्घटना (1997-98) की	रविशंकर शुक्ल
47	बोध कथाएँ: परम्परा एवं महत्व	गोपाल शरण शर्मा
49	सच्चा बंधन	उर्मिला यादव ‘उर्मि’
49	घर बैठे	डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी
50	मां की स्मृतियां	नूतन गर्ग
50	मील का पत्थर	राजेश
51	एक छोटी सी बड़ी शिक्षा	अनिल कुमार मिश्र
52	वटवृक्ष की छाँव	शिखा खुराना ‘कुमुदिनी’
53	कबूलनामा	डॉ. रजनीकांत
57	यादों की चादर	डॉ. क्षमा सिसौदिया
58	दादी का आंगन	गणपत सिंह भदौरिया
58	हाइकु	कश्मीरी लाल चावला
59	आखिरी मुलाकात	विजयानन्द विजय
60	अनकहे एहसास	प्रीति शर्मा ‘असीम’
61	पहली मुलाक़ात के आख़िरी होने के मायने	संदीप तोमर
63	अधूरी मुलाकात	अंजू कुलकर्णी
64	मालदीव-यात्रा	डॉ. क्षमा सिसौदिया
65	सुनो न सुचित्रा सेन	शहंशाह आलम
66	अंकित स्मृतियाँ	भोला नाथ सिंह
66	कहने को सब कह देता	नवीन कुमार भट्ट ‘नीर’
67	टेरेक्स की कहानी	विनोद रिंगानिया
75	इश्क में सब कुछ जायज है	सुनील चंद्र जैन
79	मेरा मन ये मुझको रुलाए	ओम शिवम उपाध्याय

79	है यह दौर बड़ा खराब	अशोक नेहरा
80	कौन?	निधि व्यास
81	गरम मतलब तातल	विनय कुमार पाठक
83	अगर तुम न होते	डॉ. अंजुलता सिंह गहलौत प्रियम
84	हमारे पूज्य : हमारे वट(वृद्ध)	अरुणा अभय शर्मा
85	ससुराल में मेरी प्रथम दिपावली	दीपा चौहान 'दीपगीत'
86	इंसान का सच	डा. रंजना दुबे
87	वो एक दुकान	डॉ. नीना छिब्बर
88	सद्भावना की मृगतृष्णा: भाषण, गीत और पूँजी का खेल	डॉ. मुकेश असीमित
91	नारीवाद	नवीन शशी
92	मानो या ना मानो	महेश सोलंकी
93	शहादत	सुन्दर लाल मेहराणियां
93	हर अखबार पर युद्ध ही युद्ध छपा है	सुनील कुमार "सत्यार्थी"
94	रंगोली सजाओ	डॉ. नीना छिब्बर
95	तन्हा जीना सीख गई	मीनू सिंह
96	सृजन की चोरी	श्वेता सिंह
96	सुबह की चाय	मुकेश कुमार बिस्सा
97	क़लम की व्यथा	शिखा खुराना 'कुमुदिनी'

सरस्वती के चरणों में

कविता:- डा. रंजना दुबे

मां तेरे चरणों में हम,
कल्याण हमारा कर देना।

कमलों की-सी कोमलता को,
जन जीवन में तुम भर देना।

वीणा के झंकृर तारों से,
मां प्रेम की सरिता बहा देना।

मां कुंद-इंदु सा श्वेत-शुचित,
मन-मंदिर निर्मल कर देना।

कलुषित मन में, कलुषित तन में,
मां ज्ञान की ज्योति बहा देना।

है यही प्रार्थना मां तुमसे—2
ना भेद रहे, मतभेद रहे।

विद्या और प्रेम की बगिया में,
ना द्वेष रहे विद्वेष रहे।

फूलों की तरह गमकें, विकसें,
तारों की तरह चमके, निखरें।

हे वीणापाणिनि, ज्ञानदायिनी,
आशीष हमें यह दे देना।

हे मां तेरे चरणों में हम,
कल्याण हमारा कर देना।

सब्जीवाला

संस्मरण:- गोदाम्बरी नेगी 'पुंडरीक'

सब्जी लेलो, भिंडी, तोरी, लौकी, टमाटर...

बरसात का समय था। बहुत तेज बारिश हो रही थी।
मूसलाधार बारिश में गली में आवाज लगाता हुआ बुजुर्ग व्यक्ति ठेली धकेलते हुए जा रहा था। न कोई बरसाती, न छतरी। सिर पर साफा पूरी तरह भीग चुका था, मास्क से पानी टपक रहा था। गली सुनसान; आखिर इतनी तेज बारिश में भला कौन बाहर निकले? वैसे भी दोपहर के दो बज रहे थे।
मैं भी भोजन के बाद विश्राम ही कर रही थी। उसकी आवाज सुनकर खिड़की पर खड़ी होकर देखने लगी थी। इतनी बारिश में भला क्यों निकला ये, कौन खरीदेगा सब्जी! यही सोच रही थी।

वो ठेली धकेलते हुए आगे निकल गया। ठेली में भी पानी भरा हुआ था, बोरे भीगकर भारी हो गए थे; पैरों में पुरानी घिसी चप्पलें, पैर टखने तक पानी में डूबे हुए थे। मैं फिर से लेट गई।

दो घंटे बाद फिर उसकी आवाज सुनाई दी:
"सब्जी लेलो, भिंडी, तोरी, लौकी, टमाटर..."

मैं चाय लेकर बैठी ही थी। जाने कब से भीग रहा होगा? बारिश अभी भी पड़ रही थी, पर उतनी तेज नहीं थी।

वो गली में अक्सर सब्जी बेचने आता रहता है। मोहल्ले से कुछ दूर ही उसका कच्चा घर है। उसका एक बेटा है, जो किसी दूसरे

शहर नौकरी करने चला गया था। सब्जी बेचना पसंद नहीं था उसे। मैंने सोचा एक-दो सब्जी ले लेती हूँ, कब से घूम रहा है बेचारा। मैंने अभी चाय पी नहीं थी, सोचा सब्जी वाले को ही दे देती हूँ; ठंड लग रही होगी। मैंने उसे रोककर थोड़ी सब्जी ली और उसे चाय के लिए पूछा;
पर उसने कहा, "बहनजी अभी नहीं! चाय पीकर फिर बारिश में भीगूँगा तो शरद-गरम हो जाएगा। ढाबे पर जाकर पी लूँगा।"

बची-खुची सब्जी को वह एक ढाबेवाले को दे देता था और बदले में खाना खा लेता था। वह आगे निकल गया। मैंने चाय पी और फिर मोबाइल लेकर बैठ गई। तभी मेरी नज़र एक फेसबुक आईडी पर गई। मैं चौंक गई ये तो सब्जी वाले का बेटा लग रहा है। मैंने उसकी प्रोफ़ाइल खोली और उसकी पोस्ट देखने लगी। अप्रैल 2020 की एक पोस्ट देखकर मैं भौंचक्की रह गई।

उसके लड़के के हाथ में एक पैकेट था, जिसे वह एक व्यक्ति को देते हुए दिख रहा था और तस्वीर के ऊपर लिखा था:

"कोई भूखा न रहे।"

क्या उसकी पोस्ट सच थी? उसका बूढ़ा पिता इस उम्र में सब्जी बेचने के लिए मजबूर है और बेटा समाजसेवी का दिखावा कर रहा है। उसने कभी बूढ़े बाप की खबर तक नहीं ली थी कि इस कोरोना काल में वो किस हालत में होगा।

"बूढ़े पिता की मेहनत और बेटे की दिखावटी उदारता सच्चाई अक्सर तस्वीरों से परे होती है।"

पश्चाताप जिसने आत्मविश्वास बढ़ाया

संस्मरण:- हेमचंद्र सकलानी

अनुभवों से गुजरते वह घटना
जो कभी नहीं भुलाई जा सकी।

बी.ए. तथा एम.ए. हिस्ट्री, एस.वी. डिग्री कॉलेज (अलीगढ़) से करने के बाद मैंने डी.एस. डिग्री कॉलेज में एम.ए. पोलिटिकल साइंस से करने के लिए एड्मिशन लेना चाहा। लेकिन वहां आगरा यूनिवर्सिटी के आर्ट फेकल्टी के डीन, जो बहुत प्रसिद्ध प्रोफेसर थे, डॉ. जी.के. गहराना ने एक बार तो इनकार ही कर दिया था।

लेकिन इंटरव्यू के समय पूछा, "आप अपना पुराना कॉलेज क्यों छोड़ना चाह रहे हैं?" मैंने उनसे इंटरव्यू के समय कहा, "सर, आप जाने-माने प्रोफेसर हैं, बहुत नाम सुना है आपका, इसलिए आपसे पढ़ना चाहता हूँ।"

उन्होंने पूछा, "और कुछ?" मैंने उन्हें मैगजीन में समाचार पत्रों में प्रकाशित कुछ रचनाएं दिखाई, वह थोड़ा सा प्रभावित हुए, लेकिन पूरी तरह नहीं। फिर उन्होंने पूछा, "और कुछ जो आपको प्रवेश दिया जा सके?" मैंने कहा, "सर, मैं गत वर्ष उस डिग्री कॉलेज का क्रिकेट कैप्टेन रहा हूँ और गत तीन वर्षों का बेस्ट बैट्समैन का प्राइज मुझे दिया गया।"

कुछ क्षण सोचने के बाद उन्होंने कहा, "जाओ, एड्मिशन के फॉर्म जमा करो, मैं खुश हूँ, तुम्हें हमने प्रवेश दिया।" कहते हुए उन्होंने फार्म पर सिग्नेचर कर मुझे दिए। उस क्लास में हमें प्रो. डॉ. पी.के. बैनर्जी मॉडर्न पॉलिटिक्स तथा इंटरनेशनल लॉ पढ़ाया करते थे।

अपने लेखन और क्रिकेट के कारण पूरे कॉलेज के प्रोफेसर और स्टूडेंट्स पर मेरा अच्छा प्रभाव था। विशेषकर डॉ. बैनर्जी और डॉ. गहराना मुझे बहुत मानते थे। मेरे साथ मेरा एक मित्र बना, राजेन्द्र सिंह चौहान, ठाकुर चौहान होकर भी बेहद सीधा-सादा था। पूरी क्लास में वह मेरे साथ ही रहता था। अपने सीधेपन के कारण वह मुझे भी पसंद था।

एक दिन मुझसे बोला, "सकलानी, मेरा एक काम है, तुम ही करवा सकते हो," कह कर चुप हो गया। दूसरे दिन फिर बोला, लेकिन बताने का साहस नहीं कर सका। तीसरे दिन जब फिर बोला, तो मैंने कहा, "बता, क्यों नहीं बता रहे हो? क्या काम है?"

तब हिम्मत करके बोला, "दोस्त, मेरी बहन ने मेरठ डिग्री कॉलेज से एम.ए. (प्री) का एक्ज़ाम दिया है। उसके एक्ज़ाम की कॉपियां जांचने के लिए प्रोफेसर पी.के. बैनर्जी साहब के पास आई हैं। तुम्हें वो बहुत मानते हैं, तुम्हारी बात टालेंगे नहीं। उनसे रिक्वेस्ट करो कि उसके कुछ नम्बर बढ़ जाएं।"

मैंने कहा, "पागल हो गए हो क्या? मेरे से नहीं होगा यह कार्य।"

पहले तो मैंने इनकार किया, यह कहते, "नहीं यार, मुझ डर लगेगा उनसे कहते।" फिर उसने तीन-चार दिन बात नहीं की। तब मुझे बहुत बुरा लगा। लेकिन राजेन्द्र ने एक दिन फिर जब बहुत अनुरोध किया, तो उस दिन क्लास रूम से निकलते हुए मैंने राजेन्द्र के सामने ही प्रोफेसर बैनर्जी से हाथ जोड़ नमस्ते करते कहा, "सर, हम आपसे एक विशेष कार्य से मिलना चाहते हैं।"

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "क्यों नहीं, कल सुबह कॉलेज आने से पहले साढ़े सात बजे घर पर आ जाना, कॉलेज के पीछे ही तो घर है।"

हम बड़ी आशा बांध कर सुबह उनके घर पर दस्तक दे रहे थे।

मुस्कराते हुए उन्होंने हमारा स्वागत किया और पत्नी को चाय तथा साथ में कुछ लाने को कहा। हम चाय की चुस्कियां ले ही रहे थे कि उन्होंने पूछा,

"अब बताओ, कैसे आना हुआ? पढ़ाई में कोई परेशानी है, या फीस माफ करानी है? निसंकोच बताओ, मैं पूरी हेल्प करूंगा।"

डरते-डरते मैने कहा, "सर, इसे तो आप जानते हैं, अपनी ही क्लास में है राजेन्द्र सिंह चौहान।"

बहुत अच्छा स्टूडेंट है। "हाँ-हाँ, जनता हूँ। बताओ, क्या परेशानी है?" उन्होंने पूछा।

मुझसे हिम्मत करके भी हिम्मत नहीं हो रही थी कुछ कहने की। तब शांति भंग करते उन्होंने पुनः कहा,

"अरे बोलो, बोलो, कोई परेशानी है तो बताओ, मैं क्या सहायता कर सकता हूँ।"

उनके कहने से हिम्मत बड़ी। तब मैंने कहा, "सर, इसकी बहन मेरठ डिग्री कॉलेज में पढ़ती है और पोलिटिकल साइंस से एम.ए. कर रही है।"

थोड़ा गंभीर होकर उन्होंने हमारी ओर देखते हुए पूछा, "तो फिर?"

"सर, उसके एक्ज़ाम की कॉपियां जांचने के लिए आपके पास आई हैं।"

"तो फिर?" कुछ गुस्से के भाव से, जिसे हम पहचान नहीं सके थे, उन्होंने पूछा।
मैंने साहस बटोरते कहा, "सर, अगर आप कुछ उसके नम्बर बढ़ा..."

बात पूरी नहीं हो पाई थी कि तमतमाते वो
खड़े होकर चिल्लाए,

"खड़े हो जाओ, खड़े हो जाओ, निकलो
मेरे घर से बाहर।"

हम "सर, सर" कहते रहे, लेकिन उन्होंने फिर चिल्लाकर कहा, "निकलो मेरे घर से बाहर तुरंत।"

हमारे "सर, सर" को उन्होंने नहीं सुना। सर झुका कर हम उनके घर से बाहर निकल आए।

तीन दिन तक हम न क्लास में, न कॉलेज जाने का साहस जुटा पाए थे। चौथे दिन हिम्मत करके गए। बैनर्जी सर सामने पड़े, तो झिझकते हुए नमस्ते की, तो उन्होंने न नमस्ते लिया, न मुस्कुराए, पहले की तरह जवाब दिया।

चार-पाँच दिन गुजर गए। हम नमस्ते करते और वह मुंह फेर कर निकल जाते। मुझे बहुत आत्मग्लानि हो रही थी।

जब मुझसे रहा नहीं गया, तो एक दिन हमने क्लास के अंदर आकर, किसी की परवाह न कर, अपने दोनों कान पकड़ कर चिल्लाकर कहा,

"सर, सॉरी, वेरी सॉरी! मुझसे बहुत बड़ी गलती हुई है, मुझे माफ कर दें। मैं बहुत शर्मिंदा हूँ, मुझे बहुत आत्मग्लानि हो रही है। मुझे बहुत पश्चाताप हो रहा है। मुझे निकालिए इससे बाहर। प्लीज, सर, प्लीज मुझे माफ कर दीजिए। अब कभी ऐसा नहीं करूँगा।"

उन्होंने बहुत दिनों बाद मेरी ओर देखा, फिर बोले,
"सच कह रहे हो, फिर ऐसा नहीं करोगे?"
गिड़गिड़ाते मैंने कहा, "जी, कभी नहीं, सर।"
उन्होंने मुस्कराते हुए मेरे कान से मेरे हाथ हटाते हुए कहा, "ठीक

है, जाओ, माफ किया। अपनी गलतियों को स्वीकार करो, पश्चाताप करके हम अपराधी सिद्ध होने से बच जाते हैं, नए रास्ते खुलते हैं। जाओ, अब ऐसा गलत काम कभी मत करना।"

मेरे अंदर खड़ी आत्मग्लानि रेत की कुतुब मीनार जैसे भरभरा कर गिर पड़ी थी। उनकी माफी से मेरा आत्मविश्वास लौट आया था।

मैं आज तक उन महान प्रोफेसर को अपनी स्मृतियों से विस्मृत नहीं कर पाया, क्योंकि गलती स्वीकार करना और माफी मांगना अच्छी मानसिकता का परिचायक भी होता है। एक सीख मुझे मिली—फिर कभी मैंने वैसी गलती नहीं की।

मेरे तीन प्रमोशन होने थे, योग्यता में ऊपर होने पर भी मैंने कभी भीख नहीं मांगी। मेरे से कम पढ़े हुए लोगों के प्रमोशन हुए। मेरे अनेक मित्र इस बात के
साक्षी हैं।

"गलती स्वीकार करना और माफी मांगना आत्मविश्वास बढ़ाने का सबसे बड़ा माध्यम है।"

•••

यह मेरी जन्मभूमि है: ठूँसरा

कविता:- गुरुदीन वर्मा

महान है यह जमीं, लिया है जन्म मैंने इस जमीं पर।
चाहे रहूँ गुरबत में, मगर मेरा निकले दम इस जमीं पर।।

यहाँ जन्मा हूँ मैं, यह मेरी जन्मभूमि है।
मुझे बहुत गर्व है इसपे, यह मेरी मातृभूमि है।।
आवो तुमको कराता हूँ, मैं दर्शन मेरे गाँव के। मोहब्बत-भाईचारे की, सच यह भूमि है।।
यहाँ जन्मा हूँ मैं ।।

हिंदू-मुस्लिम यहाँ पर, भाईचारे से रहते हैं।
मुसीबत में मदद ये, एकदूजे की करते हैं।।
होली-दिवाली पर ये गीत, मिलकर ऐसे गाते हैं।
सबको सम्मान देने वालों की, यह कर्मभूमि है।।
यहाँ जन्मा हूँ मैं ।।

महशूर है यहाँ का पानी, नग़में जिस पर बनते हैं।
बहुत बड़ा है यहाँ तालाब, जिसको सागर कहते हैं।।
कई सरकारी पदों पर, आसीन इसके लाल हैं।
बहुमुखी प्रतिभाओं की खान, यारों यह भूमि है।।
यहाँ जन्मा हूँ मैं ।।

सरसों-गेहूँ-चना की फसलें, उन्नति के गीत सुनाती हैं।
शीशम-नीम-पीपल की छाया, थकान सबकी मिटाती है।।
मेरे बचपन की यादें, मुझको रुला देती हैं।
मेरे संघर्ष की कहानी, मेरी यह जन्मभूमि है।।
यहाँ जन्मा हूँ मैं ।।

कवि बच्छराज, सुरेंद्र, यशोगान ठूँसरा के गाते हैं।
पाठ्यपुस्तकों में तरुण मित्तल, शान इसकी बढ़ाते हैं।।
कई बार जलकर भी रोशन, यह गाँव ठूँसरा है।
मेरी लेखनी की पहचान, सच में यह भूमि है।।
यहाँ जन्मा हूँ मैं ।।

•••

तीन-तीन चोरियां

संस्मरण:- डॉ. अशोक गुजराती

मेरी समझ में नहीं आता कि चोरों की नज़र में मैं इतना संपन्न क्यों दिखाई देता हूँ! भला एक मध्यमवर्गी के आवास में वे क्या तो लूटने और क्या सहेजने का इरादा बनाकर चोरी करते होंगे—मेरे जैसे नौकरीपेशा के पास बचत के नाम पर यदि थोड़ा-बहुत जमा हो भी जाता है तो वह तुरंत ही उसको ठिकाने लगाने के रास्ते ढूँढ़ लेता है। या फिर शादी-ब्याह हैं, बीमारियाँ हैं अथवा कुछ आवश्यक चीजें, जिन्हें खरीदने के अलावा उसके पास कोई चारा नहीं होता।

कभी-कभार वह ज़रूरी आभूषणों में निवेश कर भी लेता है, लेकिन ये बजाय उसकी पत्नी-बच्चों के तन की शोभा बढ़ाने के, लॉकर में बंद अपनी अनुपयोगिता को कोस रहे होते हैं। झपट्टामारों के आतंक से इनका स्थान लेने को आतुर रहते हैं एक प्रतिशत सोने या उसकी पॉलिश वाले गहने। वैसे यह मध्यमवर्गीय जीव इतना चालाक होता है कि अपना शहर छोड़कर कहीं और प्रवास पर जाने के वक्त ध्यानपूर्वक घर में एक रुपए का सिक्का भी नहीं रहने देता। जेब में या सूटकेस में ज़्यादा ले जाने का डर हो तो एटीएम से ज़रूरत पड़ने पर निकाल
लेता है।

खैर! मेरे एक पुराने और दो नए निवास में हुई कुल तीन चोरियों के काल में न एटीएम था और न बैंक लॉकर में रखने का चलन। बावजूद इसके अक्सर घर में ऐसा कुछ विशेष रहता न था जो चोरों को आकर्षित करे। मुझे चोरों की किस्मत को लेकर शक है और उनकी मूर्खता पर पूरा विश्वास। अरे भाई! किसी अमीर या भ्रष्टाचारी की इमारत में सेंधमारी करते तब कहीं नकद रकम, सोना-चांदी हाथ लगता, यहाँ क्या रखा है!

और इनकी तक़दीर ही फूटी होनी चाहिए जो इनके परिश्रम का फल उनके मुँह से छिन जाता रहा। हुआ यूँ कि पत्नी के मायके जाने पर मैं घर पर अकेला था। छुट्टियाँ चल रही थीं इसलिए कॉलेज जाने की विवशता नहीं थी। कमसेकम एक बार भोजन के लिए बाहर जाना मेरी मजबूरी थी। टिफिन का इंतज़ाम नहीं हो पाया था। तथाकथित छुटभैये चोर ने देखा होगा कि यह बंदा रोज़ करीब एक बजे दोपहर को जाकर एक-डेढ़ घंटे में लौटता है; रात में बहुधा उसके साथ कुछेक दोस्त होते हैं, जो खाने-पीने का सामान भी संग ले आते हैं।

मैं उस दिन दोपहर को ज़रा जल्दी वापस आ गया था और किसी की दीवार फाँदती झलक मुझे दिखाई दे गई थी। क्या हुआ होगा, इसका अंदाज़ा लगाना आसान था। वह मेरे बाहर जाने के कुछ देर बाद आया होगा। बेवकूफ़ ने अलीगढ़ी ताला तोड़ने के लिए लोहे की सलाख लायी होगी। उसने ताले में सलाख फँसाकर झटका मारकर उसे खोलने की पूरी ताक़त से कोशिश की होगी। ताला चरमराकर टूट गया होगा। उसने सोचा होगा, अब रास्ता साफ़ हो गया। लेकिन नहीं, ताला जिसमें लगा था, वह कुंडी भी उसके ज़ोर लगाने से बुरी तरह टेढ़ी हो गई थी। इतनी कि उसके पीछे फँसी छेद वाली पीतल की मोटी सांकल-नुमा लंबी पट्टी बाहर खींचना नामुमकिन हो गया था।

मैं जब अपने नए मकान में रहने आ गया, वहाँ भी चोर मेरा कुछ बिगाड़ नहीं पाया। सिवा दरवाज़े और ताले को नुक़सान पहुँचाने के। इस बार भी वही हुआ, पत्नी अपने भाई के यहाँ गई थी। अवसर उपयुक्त जान मैं भी तीन दिनों के लिए बाबा आमटे के आनंदवन निकल गया। जाते हुए कुछ अंतर पर चौकीदारी करते व्यक्ति को ही ज़िम्मेदारी सौंप गया था। लौट कर रात में ग्यारह बजे पहुँचा। दरवाज़े का ताला टूटा पड़ा था। भीतर गया। बेडरूम में पलंग पर अलमारियों का सारा असबाब बिखरा पड़ा था। चौकीदार को बुलाया। वह दो घंटे पहले सब कुछ ठीक देख खाना खाने चला गया था और आने वाला ही था। पत्नी को फ़ोन लगाया। उसने बताया कि अलमारियों में कोई क़ीमती वस्तु थी ही नहीं। उसने

सावधानी के तौर पर स्टोर में रखी बड़ी कोठी में गेहूँ के अंदर गहने दबाकर रख दिए थे। मैं भागा, कोठी में हाथ डाला, गहने सही-सलामत थे। मैंने छुटकारे की साँस ली और चोर के भाग्य के प्रति संवेदना प्रकट की।

अगले ही दिन मैंने एक अतिरिक्त ऑटोमैटिक ताला लगवाया और निश्चिंत हो गया। हालांकि चोर निश्चिंत नहीं बैठा होगा कि उसका मूल्यवान समय नष्ट हुआ। मालूम नहीं वही था या अन्य, फिर हमारी अनुपस्थिति में चोरी का प्रयास हुआ। चौकीदार न मिलने से हम पड़ोस में चौकीदारी कर रहे शख़्स को ही ज़िम्मा दे गए थे। वह शायद उधर ही सो गया था।

चोर ने समूचा होल-ड्रॉप ही नट खोलकर निकाल लिया था। अब बारी थी ऑटोमैटिक लॉक की, जो बिना चाबी तीन बार घुमाये खुलना न था। उसने आँगन में पड़ी कुछ मोटी-सी लकड़ी दरवाज़े के नीचे की खाली जगह में घुसाकर खूब बल लगाया होगा। बदनसीब दरवाज़े को चंद खरोंचें लगाने के पश्चात थक गया होगा। उससे वह मज़बूत लॉक टूटा ही नहीं। इस प्रकार इस अंतिम चोरी में भी चोर ने मुँह की खायी। मैं तीनों बार बच गया।

"सावधानी और बुद्धिमानी चोरियों की परवाह न करते हुए सुरक्षित रहना।"

•••

लौट आती हैं स्मृतियां

कविता:- लव कुमार

कई बार जिन्दगी के पड़ावों से गुजरते हुए
लौट आती हैं स्मृतियां
जिन्होंने जिया था एक सम्पूर्ण जीवन
इन कदमों के समानांतर चलते हुए
जो रुकी रहती थीं दुखों के घेरे के आस-पास
किसी सुख की छोटी-छोटी स्मृतियां लिए।
लौटती हैं यादें जैसे किसी वृक्ष की टहनियों पर
लौट आते हैं नन्हें पल्लव
पुराने पत्तों की उपजाऊ शक्ति समेटे
जैसे किसी स्वप्न में भर जाता है हकीकत का रंग
जैसे लौटती है पहाड़ों पर बर्फ की परत
पिछले सीजन की तरह
किन्हीं यादों के आंगन को फिर से रोशन करने
उसी तरह लौटना होता है शायद
एक बार फिर पीछे छूट गए किन्हीं स्वप्नों की
जुगनुओं जैसी रोशनी में अधूरे कुछ और पल गुजारने।
स्मृतियों में लौटना
नये जन्म की ओर लौटने जैसा ही है
क्योंकि यादों के बिना नहीं हो सकता
नये रास्तों का निर्माण
नहीं संजोया जा सकता किसी सफर का ख्याल भी
बहुत जरूरी है स्मृतियों में फिर से लौटना
किसी पुनर्जन्म की तरह।
हो सकता है जहां से लौट आए थे मायूस
वहां फिर से निकल आया हो
सूरज का कोई टुकड़ा
चांद के शुक्ल पक्ष का थोड़ा सा चमकता हिस्सा
जिसके अभाव में हमने कर दिया था समर्पण
अपने आत्मविश्वास और दृढ़निश्चय का
थोड़ा सा भी इंतजार किए बगैर ही
हो सकता है इन लौट रही स्मृतियों में
फिर से जिया जा सके इस जीवन की
निराशाओं को फिर से स्मृतियों में ही।

•••

दो किस्त

लघु कथा:- निधि "मान सिंह"

6 महीने से घनश्याम अपनी बीमारी से जूझ रहा था। लेकिन अब उसकी हिम्मत जवाब दे गई और उसने चारपाई पकड़ ली। गांव के डाक्टर, हकीम, वैद्यों सब ने हाथ खड़े कर दिए और शहर जाने की सलाह दी।

घनश्याम के पास 5 बीघा जमीन थी जो उसने दो किस्तों में, ढाई-ढाई बीघा करके लाखों दुख उठाने के बाद खरीदी थी। लेकिन बेटी की शादी करने के लिए उसे ढाई बीघा जमीन बेचनी पड़ी। अब उसके पास जो ढाई बीघा जमीन बची थी, उसमें ही अपना गुजर-बसर करता था। घनश्याम की यही आख़िरी इच्छा थी कि मरने से पहले रतन का ब्याह करके उसकी जमीन उसे सौंपकर आंखें बंद कर ले।

घनश्याम का बेटा रतन शहर की एक फैक्ट्री में काम करता था। रहने के लिए उसके पास दो-तीन चारपाई की कोठड़ी थी। रतन की मां ने उसे पिता की बीमारी का तार लिख भिजवाया। तार मिलते ही रतन अगली गाड़ी से आकर पिता और मां को लेकर शहर आ गया।

कई दिनों की मुश्किलों के बाद रतन ने अपने पिता को शहर के बड़े अस्पताल में भर्ती करवा दिया। अस्पताल में ना दवाइयों का इंतजाम था, ना खाने का और ना रहने का। डाक्टर आते और दवाइयों का पर्चा रतन के हाथ में थमा जाते। आठ दिनों में ही रतन की सारी जमा पूंजी खत्म हो गई और उसके पिता की हालत ठीक होने की जगह और बिगड़ती जा रही थी। रतन को कुछ भी सूझ नहीं रहा था। ऊपर से उसकी मां का रो-रोकर बुरा हाल था।

रतन का एक दोस्त उससे मिलने अस्पताल में आया। उसने उसे शहर के एक बड़े डाक्टर और उसके अस्पताल के बारे में बताया। रतन तनिक भी देर नहीं करते हुए अपने पिता को वहां ले गया। बड़े अस्पताल के डाक्टर ने रतन से कहा कि तुम्हारे पिता का ऑपरेशन करना पड़ेगा और बहुत बड़ा खर्चा होगा।

रतन के पास अब कोई पूंजी नहीं थी सिवाय उस ढाई बीघा जमीन के। उसने अपने पिता का जीवन बचाने के लिए वो बची हुई ढाई बीघा जमीन भी बेच दी। डाक्टर ने घनश्याम का ऑपरेशन किया और उसे बचा लिया।

घनश्याम ने रतन से पूछा “मेरे ऑपरेशन के लिए इतना रुपया कहाँ से लाए?”

जब रतन ने पिता से ढाई बीघा जमीन बेचने की बात कही, तो जमीन बिकने का सदमा घनश्याम बर्दाश्त नहीं कर पाया और चल बसा।

रतन दोनों हाथों से सिर पकड़कर एकदम खामोश दीवार से सटकर बैठ गया। उसकी मां जोर-जोर से छाती पीटकर रो रही थी। रतन की आंखों में आंसू थे और वह यही सोच रहा था कि पिता जी ने अपने जीते जी 5 बीघा जमीन दो किस्तों में खरीदी थी और उनके मरने से पहले ही यह जमीन दो किस्तों में बिक गई।

“परिवार और त्याग की भावना किसी भी संकट से बड़ा वरदान है।”

लौटते हुए

कविता:- लव कुमार

लौटना है तो किसी की
आँखों के करीब से लौटकर आना
पलकों के बहुत नजदीक से
जहां सूखे थे कभी आंसूओं के निशान
जहां रखी होंगी आज भी बची हुई कुछ और
पारदर्शी बूंदें
जहां इंतजार के बहुत सारे पल रखे होंगे
तहों में लगाकर किसी ने तुम्हारे लिए।
लौटना है तो किसी के कदमों के पास से
आना लौटकर
जब उन कदमों पर गिरेगी सुबह की ओस
तब उन कदमों के निशानों की मिट्टी को
छूकर आना ताकि संजोया जा सके ये सफर
मन की तहों में कहीं
किसी भी दिन याद करने के लिए।
अगर वापिस आना ही है तो
वहां तक जरूर जाकर आना
जहां किसी किताब के मुड़े हुए पृष्ठों पर
रखे हुए हैं गुलाब के मुरझाये फूल
इंतजार की तारीखों में समेटकर
लौटते हुए एक नजर जरूर देख आना
डाकघर के उस डाकिए की नजर में
जिसके हाथों को छूकर चूमने को करता था मन
जहां से दिखता है डूबता हुआ सूरज
जहां रुकती है शाम की आखिरी बस
लौट आना मगर इन सब से होते हुए।

•••

गांव के घर

कविता:- व्यग्र पाण्डे,

यद्यपि वो
कच्चे ही थे
पर सच्चे थे
मिट्टी की दीवारों पर
रहती पट्टियां शोभित
जमीन पर मांडणों का राज
याद आते जो आज
उन्हें मकान नहीं
घर कहा जाता था
दादा-दादी ताऊ-ताई
काका-काकी सब मिल
प्रेम से रहा जाता था
जिनमें खुशबू होती
गोबर माटी की
तीज-त्योहार चूरमा-बाटी की
उन घरों से जुड़ा था
पीढ़ियों का इतिहास
इसलिए वो थे
हृदयों के पास
हमारे खास
जबसे घर छोड़
मकान में आये हैं
लगता है हम
सब कुछ छोड़ आये हैं
ये पत्थर के मकान
पत्थर दिल बना देते हैं
चलते फिरते आदमी को
मशीन बना देते हैं
प्रेम, सहयोग, सम्मान से
ना रहता इनका वास्ता
एक तेली के बैल जैसा
हो जाता जिनका रास्ता
दिखावटी संसार में खो जाते हैं
जो गांव छोड़
शहर में आ जाते हैं।

•••

मांडना (भारत की सांस्कृतिक धरोहर!)

आलेख:- डॉ. वर्षा महेश 'गरिमा'

'साहित्य-संगीत-कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।
भारत देश समूचे विश्व में अपनी अनूठी संस्कृति हेतु एक विशेष पहचान रखता है। प्रादेशिक विविधताएं इस देश की विशेषता का परिचय देती हैं। भारतीय संस्कृति में तीज-त्योहार और परंपराएं केवल उत्सव के रूप में नहीं मनाए जाते अपितु यहाँ उत्सव धार्मिता के नेपथ्य में अनेकों विशेष उद्देश्यों की पूर्णता निहित होती है।

भारतीय त्योहारों में जहां तन पर पारंपरिक परिधानों का चलन है, वहीं मन में घर, आंगन और प्रकृति की सुंदरता की भी प्राथमिकता है। इसी संदर्भ में आज हम भारत की प्राचीनतम भूमि-चित्रकला परंपराओं में से एक मांडना चित्रकला के बारे में जानने और समझने का एक विस्तृत प्रयास करेंगे।

इतिहास और उत्पत्ति:
मांडना एक प्राचीन भारतीय चित्रकला है, जिसका प्रमुख प्रतिनिधित्व राजस्थान और मध्यप्रदेश में देखा जाता है। जानकारों के अनुसार यह कला मुख्य रूप से राजस्थान में उत्पन्न हुई और इसे विकसित होने में कई सदियां बीत गईं।

मीणा समुदाय की परंपरा:
मांडना कला राजस्थान के मीणा समुदाय की प्राचीन जनजातीय कलाओं का एक प्रमुख उदाहरण है। हाड़ौती क्षेत्र में रहने वाली महिलाएं इस कला को सर्वप्रथम विकसित करती हैं। मांडना शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'मंडन' शब्द से हुई है,
जिसका अर्थ है "सजाना"।

उपयुक्त सामग्री:
मांडना सामान्यतः घर की दीवारों और फर्श पर बनाई जाती है। गेरू (लाल मिट्टी) और खड़िया (सफेद चाक) का प्रयोग होता है। महिलाओं द्वारा खजूर या आम के डंठल से बनी कूची (कच्चा ब्रश) की मदद से घर की दीवारों एवं फ़र्श पर मांडना बनती है। गणेश, मोर और काम करती स्त्रियों के चित्र मांडना में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

मांडना के प्रचलित अभिकल्प:
मांडना में ज्यामितीय आकृतियों (त्रिभुज, चतुर्भुज आदि) को केंद्र में रखकर उनके चारों ओर फूल, पत्तियों या वृक्षों की डिज़ाइन बनाई जाती है। यह घरों में शुभता लाने और नकारात्मक शक्तियों को रोकने का प्रतीक है।

मांडना के प्रकार:
- टपकी मांडना: वृत्त, त्रिकोण और आयत जैसी आकृतियाँ।
- स्वरूप चौका: चतुर्भुज आकृति वाला मांडना, सुख-समृद्धि का प्रतीक।
- षष्टकोण मांडना: दीपावली और फसल कटाई के समय शुभता का प्रतीक।
- जालीदार और पुष्प मांडना: पारंपरिक रूपांकन।

मांडना का स्त्रीत्व:
मांडना कला की संवाहक स्त्रियां रही हैं। राजस्थान में हर बेटी अपनी मां से मांडना सीखती है। पीढ़ी दर पीढ़ी यह कला माताओं द्वारा बेटियों को सौंपी जाती है।

मांडना का महत्व:
वैदिक काल से भी पुरानी मांडना कला भारतीय संस्कृति का अटूट हिस्सा है। यह कला केवल घरों का रंग-रोगन नहीं अपितु

भारतीय परंपराओं का सत्कार है।
"बिना सजे घर आंगन द्वारे, त्यौहार न हो पूरे हमारे।"
इसलिए हर भारतीय के घर में शुभ अवसरों, त्योहारों और विवाह समारोह पर मांडना बनाया जाता है। इससे घरों में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवेश होता है, सूक्ष्म जीवों से राहत मिलती है और बुरी शक्तियों के प्रभाव से मुक्ति मिलती है।

नवाचार और अनुप्रयोग:
मांडना केवल परंपरागत घरों तक सीमित नहीं रही। अब यह डिज़ाइन और फ़ैशन इंडस्ट्री में भी लोकप्रिय है। सरकारी और निजी संस्थानों से मिले सहयोग से बड़े शहरों में मांडना कला से सुसज्जित वस्तुओं की प्रदर्शनी लगाई जा रही है। ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से इसे सीखना भी आसान हुआ है।

निष्कर्ष:
मांडना केवल कला नहीं, बल्कि परंपराओं और प्रकृति को सहेजने का, पुरखों को नमन करने का संदेश है। यह मानव सभ्यता का जीवंत प्रतीक है। इसे सहेजिए, स्वीकारिए।

"मांडना केवल चित्र नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति और जीवन मूल्यों का सजीव प्रतिबिंब है।"

•••

साहित्य और कवियों की स्वतंत्रता आंदोलन में भूमिका

आलेख:- हेमचंद्र सकलानी

यह कटु सत्य है कि देश प्रेम की भावना से ही राष्ट्रीयता पैदा होती है। इसका अनुभव अहसास तब होता है जब हम इतिहास में अपने शहीदों की शहादतों को देखते-पढ़ते हैं।

देश प्रेम की भावना को अपने साहित्य के माध्यम से जितनी सुंदरता के साथ समय-समय पर साहित्यकारों ने व्यक्त किया है, वह किसी और माध्यम से नहीं हुआ। साहित्य का योगदान यूँ तो मानव जीवन के हर क्षेत्र में रहा, पर अपने इस क्रम में साहित्यकार प्रारंभ से लेकर आज तक हारा-थका नहीं।

नेपाल को छोड़कर दुनिया का हर देश कभी न कभी किसी न किसी देश का गुलाम रहा। लेकिन आज देश प्रेम की भावना की बदौलत ही सब स्वतंत्र हैं। यदि देश प्रेम की भावना नागरिकों में न होती तो शायद ही कोई देश दासता से मुक्त हो पाता।

हमारे स्वतंत्रता संग्राम में इस साहित्य ने—साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से देश प्रेम, देश भक्ति की भावना और आंदोलनों को ऊर्जा प्रदान कर स्वतंत्रता दिलाने में मुख्य भूमिका निभाई। यही वह भावना थी, जिसके कारण अंग्रेजों के समय पांच सौ पैंसठ रियासतों में बंटा यह देश, आज एक देश, एक राष्ट्र के रूप में हमें नजर आता है।

यह देश प्रेम, यह राष्ट्र प्रेम आखिर है क्या? इसके कई अर्थ लगाए और बताए जा सकते हैं। यह भावना कोई देने-थोपने की चीज नहीं होती। यदि नागरिक अच्छे हों, तो यह स्वतः उत्पन्न होती है। जन्मभूमि को स्वर्ग के समान मान कर ही कहा गया है—
“जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।”

नेपाल ने संस्कृत के इस श्लोक को अपने राष्ट्रीय चिन्ह पर अंकित किया। रामायण में भी कहा गया है कि जब लक्ष्मण सोने की लंका और उसकी सुंदरता को देखकर मंत्र-मुग्ध हो उठे थे, तो राम ने उन्हें कहा कि जन्म देने वाली माँ और जन्मभूमि—हमारी अयोध्या—स्वर्ग के समान है।

1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और साहित्य का योगदान
भारत के 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (जिसे गदर की संज्ञा

दी गयी थी) में देश भक्ति की भावना मंगल पांडे, तांत्या टोपे, और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के द्वारा प्रकट हुई थी। उस देश प्रेम की लौ आज तक जलती दिखाई पड़ती है।

उस काल में हजारों देशभक्तों और स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वतंत्रता के यज्ञ में अपनी आहुति दी, नहीं तो शायद स्वतंत्रता प्राप्त न होती। उनकी शहादत के बाद प्रसिद्ध लेखिका सुभद्रा कुमारी चौहान का उनकी वीरता के प्रति समर्पित वीरता गीत—
“सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भ्रकुटी तानी थी, बूढ़े भारत में आई फिर से नई जवानी थी, खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी, बुंदेलों हर बोलों के मुंह से हमने सुनी कहानी थी”
तो राष्ट्रीय गीत बनकर हर देशवासी के दिल की धड़कन और जोश का ज्वालामुखी बन गया।

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित देश के प्रति वंदना गीत:
“वंदे मातरम्, वंदे मातरम्। सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्, शश्यश्यामलाम् मातरम्। वंदे मातरम्।”

यह गीत उस समय राष्ट्रगीत बनकर प्रभात फेरियों में हर आंदोलनकारियों के स्वर से निकलकर देश प्रेम की भावना को जाग्रत करता था। इसकी भावात्मक प्रस्तुति से ही इसे विश्व के सर्वश्रेष्ठ दस गीतों में दूसरा स्थान प्राप्त हुआ।

जन गण मन गीत को रविन्द्रनाथ टैगोर ने बंगला में लिखा। सुभाष चन्द्र बोस को यह बहुत पसंद था। उन्होंने हिंदी में इसका अनुवाद करवाया और कैप्टेन लक्ष्मी सहगल ने अपने स्वरों के साथ पूरे समूह से इसे गाया। नेताजी ने इसे अपनी इंडियन नेशनल आर्मी का गीत बना दिया। इस गीत ने आंदोलनकारियों में एकता और देश प्रेम की भावना को नया जोश प्रदान किया।

देशभक्ति गीत और कविताएँ

जयशंकर प्रसाद का गीत:
“हिमाद्री तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा समुज्वला स्वतंत्रता पुकारती, अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो, प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो बढ़े चलो।”
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियाँ:
“जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है वह नर नहीं, नर पशु निरा है, और मृतक समान है।”
“मानस भवन में आर्यजन जिनकी उतारें आरती, भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती।”
“जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं, हृदय नहीं पत्थर है जिसमें स्वदेश से प्यार नहीं।”
इन पंक्तियों ने जनमानस में राष्ट्र के प्रति प्रेम को और प्रज्वलित किया।

स्वतंत्रता सेनानी और देश प्रेम स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को देखने पर चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव, रामप्रसाद बिस्मिल, सुभाष चन्द्र बोस जैसे हजारों नाम सामने आते हैं। हजारों गुमनाम शहीदों ने स्वतंत्रता की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दी। उनके त्याग और बलिदान का फल है कि हम आज स्वतंत्र भारत में साँस ले पा रहे हैं।

राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी ने शहीद होने की भावना व्यक्त की:
“वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला दो, बलि जहाँ हों शीश अनगिनत, एक शीश मेरा मिला दो।”

माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी राष्ट्रीय भावना व्यक्त की:
“चाह नहीं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ, चाह नहीं
माला बिंध प्यारी को ललचाऊँ, मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ पर देना तुम, फेंक मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जि
स पथ पर जाएँ वीर अनेक।”

रामप्रसाद बिस्मिल के शेर:
“सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।”

“वक्त आने पर बता देंगे तुझे ए आसमा, हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है।”

आधुनिक समय में देश प्रेम अटल बिहारी बाजपेयी ने संसद में कहा:

“मातृभूमि से बढ़कर कोई चंदन नहीं होता, वन्दे मातरम् से बढ़कर कोई वंदन नहीं होता।”

“यह चंदन की भूमि है, यह अभिनंदन की भूमि है, यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है। इसका कंकर-कंकर शंकर है, इसका बिंदु-बिंदु गंगा जल है। हम जियेंगे तो इसके लिए, हम मरेंगे तो इसके लिए।”

देश प्रेम में डूबने पर कवि इस प्रकार लिख सकते हैं:
“है हमको इस देश की कसम, इसके लिए जिएंगे और मरेंगे हम, सरहद पर हुए जो शहीद उनकी कसम, हर जुल्म को खत्म करके दम लेंगे हम। प्रेम की गंगा ऐसी बहेगी, एक दिन नफरतों की आँधियों को जीत लेंगे हम, लहराए गगन में सबसे ऊँचा तिरंगा, इसी कामना में हरदम जिएंगे हम।”

“कसम है तेरी, तेरे तिरंगे की हम, तेरे तीनों रंगों में मिलेंगे, प्यार है तुझसे, इबादत हमारी, हम जब भी जपेंगे जय हिन्द कहेंगे।”

निष्कर्ष: आधुनिक समाज यह मान बैठा है कि देश सेवा केवल सैनिकों का कार्य है। लेकिन सत्य यह है कि देश के प्रति आदर, सेवा, सम्मान और उत्तरदायित्व का निर्वहन भी सच्चे देश प्रेम से कम नहीं।

अपने देश के शहीदों को समय-समय पर स्मरण करना चाहिए। जैसे डॉ. उर्मिलेश ने लिखा:
“जिनकी कुर्बानी वतन की आरती से कम नहीं, याद उन वीरों की दोस्तों, बंदगी से कम नहीं।”

“कयामत तक हर वर्ष जलाएंगे यूँ ही दिये हम, लहू से जो रोशन हुए कभी मद्धम न होंगे, शहीदाने वतन की याद में उनकी मजारों पर अगर होगी, तो दीवाली कभी मातम नहीं होगी।”

देश प्रेम ही राष्ट्रीय एकता की भावना को जन्म देता है। इस भावना को जाग्रत करने में साहित्य ने हमेशा अग्रणी और उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।
•••

लक्ष्मी सबको प्यारी है

लघु कथा:- डॉ. वर्षा महेश ‘गरिमा’

घर के सामने की नाली में कचरा साफ करते हुए अचानक कल्लू हरिजन का हाथ दिवाल से सटी साइकिल से टकरा गया। कल्लू खुद को संभालता इससे पहले ही मिश्राइन चिल्ला उठी, “बबुआ के गाड़ी घिना दिए, काहे हाथ लगाए?? ऐ बहुरिया तनी पनिया लाके धोई”।

बेचारा कल्लू बामन की ऊंची जात से डर गया, उसने धीमे स्वर में पीने को पानी मांगा, तो मिश्राइन की बहु ने नाक-मुँह सिकोड़ते हुए एक टूटे से प्लास्टिक के मग्गे में पानी दिया।

अब जब कल्लू को नाली साफ करने का मेहनताना देने की बात आई तो मिश्राइन ने पचास रुपए कल्लू को दिए...

कल्लू पूरा पैसा खीसे में रखने ही वाला था कि मिश्राइन आंखें दिखाकर बोली, “पूरा पचास रखोगे क्या? तीस रुपए वापस दो।” कल्लू ने बोला, दाम बड़ गया है, परंतु मिश्राइन तुनक कर बोली, “वाह रे कल्लू, नाली ही न साफ किए हो, कोई धनुष नहीं तोड़े हो।”

कल्लू ने चुपचाप तीस रुपए वापस दे दिये। मिश्राइन ने लपक कर पैसा अपने बटुए में डाल लिया। तभी बहुरिया तपाक से बोली, “अम्मा, कल्लू का छुआ पैसा...”
मुंह में पान चबाते हुए मिश्राइन बोली,
“ऐ पगली, लक्ष्मी का भी भला कोई जात होता है!” •••

यादें छेड़तीं

ताँका:- रमेश कुमार सोनी

आँखों के घड़े
मोतियन से भरे
कंठ हैं प्यासे
सावन की अगन
जले मन आँगन।

यादें ना सोतीं
इश्क़ वाली रातों में
प्रहर गिने
बावरा जैसे फिरे
गाँव, गली, मोहल्ले।

सुर्ख़ गुलाब
किताबों बीच ज़िन्दा
स्मृति वक़्त की
एक वसीयत है
प्रेम की गीता जैसे।

डायरी पन्ने
प्यारे शब्द महके
पढ़ा तो ज़िन्दा
हूक न्यौता देती है
तेरी गुलाबी यादें।

यादों के अश्रु
बनते अफसाने
ढूँढ बहाने
आँखें छिपा के बोलें
वो झूठ नहीं जाने।

यादों की पर्त
ज़माता रहा वक़्त
दिल जो भरा
'नो एंट्री' लगा बैठा
डिलीट नहीं होता।

यादें डकैत
चैन, सुकून छीने
डसके भागे
अश्रु से यारी बड़ी
हिचकी पक्की सखी।

यादें छेड़तीं
छम से कोई आया
हँसाके भागा
लोग पूछने लगे-
'क्या हुआ बताओ भी?'

स्मृति का वन
पतझड़-बसंत
शर्माते आते
खिले-झरे लौटते
सुगंध बिखेरते।

निगलें कैसे
यादें कड़वी घुट्टी
सस्ती मिलती
दुःख से पक्की यारी
सुख से रार ठनी।

•••

वो मुश्किलात किसी भी सफ़र के देखते हैं

ग़ज़ल:- भानु झा

वो मुश्किलात किसी भी सफ़र के देखते हैं
मगर वो हैं कि सफ़र फिर भी कर के देखते हैं।
जिन्हें शजर* की कभी क़द्रो फ़िक्र रहती नहीं
वो लोग भी यहाँ सपने समर* के देखते हैं।
यक़ी रखें कभी दुनिया की भी ख़बर लेंगे
मगर अभी तो ये हालात घर के देखते हैं।
अभी तो उनसे है इज़हारे इश्क़ दूर की बात
अभी तो एक नज़र उनको डर के देखते हैं।
हमें यक़ीं है अगर अपने हर इरादे पर
तो आसमान को मुठ्ठी में भर के देखते हैं।

*शजर = पेड़
*समर = फल

•••

अनुभव की थाती

काव्य:- मुकेश कुमार बिस्सा

जीवन की राहों पर चलता गया,
गिरता रहा, फिर संभलता गया।

हर ठोकर ने एक सबक दिया,
अनुभव की पोटली में भरता गया।

बचपन की वह भोली सी चाहत,
जवानी की वह अनजानी राहत।

हर दौर ने अपना रंग दिखाया,
कुछ कड़वे तो कुछ मीठे फल खिलाया।

टूटे सपने, बिखरे वादे भी देखे,
वक्त के बेरहम इरादे भी देखे।

पर हर टूटन ने मज़बूत किया,
सच्चाई से मेरा परिचय कराया।

लोगों के बदलते रंग भी पहचाने,
अपनों के पराये ढंग भी जाने।

किस पर करना है विश्वास, यह सीखा,
किससे रखनी है दूरी, यह परखा।

सफलता ने जब शीश झुकाया,
तो विनम्रता का पाठ पढ़ाया।

असफलता ने जब घेरा डाला,
तो संघर्ष की मशाल जलाई।

ज्ञान किताबों से मिलता है, माना,
पर विवेक तो तुजुर्बे से ही आना।

यह अनुभव ही तो जीवन की अस्लियत है,
जो हमें हर पल समझदार बनाता है।

•••

बड़े दानवीर कहलवायेंगें

काव्य:- वीरेन्द्र कौशल

है न क़माल
धोती फाड़ी बना दिया रुमाल
आज ख़ुद हाथ जोड़
बना कर अपना गठजोड़
अपना बता
कर के ख़ता
अंजान से जानकार बनने वाले
वाकपटुता सहारे भीख मांगने वाले

ऐसा कुछ बड़ा कर पल जायेंगें
हमें ही धोख़ा दे तरीक़े से छल जायेंगें
कल तक सबसे बड़े दानवीर बन
हर में खानें वाली वस्तु के लगा कर घुन
हमें ही तो ठगेंगें
फ़िर बिना रंग रंगेंगें

जो मूलभूत सुविधाएं हमारे लिए
फ़िर बस केवल इनके लिए
उन्हीं को डकार जायेंगें
फ़िर जेब भर फ़रार जायेंगें
हमें एक थैली में राशन भर
ख़ुद अनेकों अनेक बोरियां भर
हमें कहीं नज़र ही नहीं आयेंगें

हमारे लिए अच्छे दिन बताएंगें
है न कितना क़माल
हर पल होता धमाल
आज हमसे ही मांगनें वाले
सरबत का भला चाहने वाले
अपने आप को ही योग्य बतलायेंगें
कल हमसे ही दानवीर कहलवायेंगें
बड़े दानवीर कहलवायेंगें
बड़े दानवीर कहलवायेंगें

•••

गुब्बारे वाली दीवाली

लघुकथा:- संजय सिंह चौहान

गली के मोड़ पर छोटी-सी टोकरी लिए बैठा था छोटू, आठ साल का चुलबुला सा बच्चा, जो रोज़ शाम को रंग-बिरंगे गुब्बारे बेचता था। दीपावली की शाम थी। पूरा शहर रोशनी से नहाया था, पर छोटू की टोकरी में अब भी आधे से ज़्यादा गुब्बारे बचे थे।
उसने आसमान में छूटते पटाखों को देखा, आँखों में चमक थी—पर दिल में हल्की सी उदासी भी।

"काश आज सब गुब्बारे बिक जाते, तो मैं भी माँ के लिए मिठाई ले जाता," वह बुदबुदाया।

तभी सामने से एक कार रुकी। कार से उतरी छोटी-सी बच्ची, झिलमिल कपड़ों में, हाथ में चॉकलेट थामे हुए।
"मुझे सारे गुब्बारे चाहिए!" उसने मुस्कराते हुए कहा।
छोटू ने हैरानी से पूछा, "सारे?"

बच्ची ने हँसते हुए कहा, "हाँ! फिर हम इन्हें आसमान में उड़ाएँगे, जैसे दीपों की तरह, ताकि हर कोई उन्हें देख सके!"
उसके पीछे उसकी माँ भी आई। उसने छोटू को मिठाई का डिब्बा और एक गर्म जैकेट थमाया—"दीवाली है बेटा, बस यूं ही थोड़ी सी खुशी बाँटनी थी।"

छोटू की आँखें चमक उठीं—गुब्बारे बिके, मिठाई मिली, और पहली बार उसे लगा जैसे उसकी भी दीवाली मन रही हो।
कुछ ही पलों में वो दोनों बच्चे मिलकर सारे गुब्बारे आसमान में छोड़ रहे थे। नीचे दीप जल रहे थे... और ऊपर उड़ते थे रंग-बिरंगे सपने।

दीवाली तब सबसे खूबसूरत लगती है, जब रौशनी सिर्फ घरों में नहीं, किसी के दिल में भी उतरती है।

कहानी का सार - यह कहानी दर्शाती है कि सच्ची खुशी और उत्सव का मज़ा केवल भौतिक चीज़ों में नहीं, बल्कि दूसरों के साथ बाँटने और दिल से खुशियाँ फैलाने में है। छोटे-छोटे कर्म भी किसी की जीवन में उजाला और खुशी ला सकते हैं।

•••

बापू तेरे तीन बन्दर

काव्य:- - वीरेन्द्र कौशल

बापू तेरे तीन बन्दर
लिए चोट दिल के अंदर
जाने कहाँ खो गए
बापू तेरे

संदेशा तेरा ताज़ा रहा, बहुत ही गहरा
समाज पर सदा से ही रहा सशक्त पहरा
क्या हालात बने कि अब छूमन्तर हो गए
बापू तेरे

बूरा न बोलना है सदा प्रहरी सोच
ज़ख्म जो कभी न भरे वो गहरी चोट
होटों की मुस्कान पर अब कत्लेआम हो गए
बापू तेरे

बुरा न देखना अब रह गया केवल संदेश
विदेश क्यों लगने लगा अब अपना ही देश
जाने क्यों सभी अनोखी संभयता में खो गए
बापू तेरे

बुरा न सुनना अब लगे सभी को अज़ीब
रिश्तें नज़दीकी मगर दूरियाँ हो गई बहुत क़रीब
सच सुनने वाले कान अब कहाँ सो गए
बापू तेरे

तीनों के कर्म यहाँ बड़े ही निराले
खाये गहरी चोट पर सदा दूसरों को सम्भालें
कौशल बेबस ज़िंदगी के माईने क्यों खो गए
बापू तेरे

दुनियाँ में जीने के लिए बदलाव बहुत जरूरी
देशहित सदा सर्वोपरि चाहे जो मज़बूरी
जान हथेली पर रख जीने वाले कहां खो गए
बापू तेरे

•••

देहरी पर सांझ

काव्य:- मधुकर वनमाली

विकल विधु देहरी पर सांझ
घाट आरती गुंजित झांझ
अड़ा तिमिर अब और समीप
रखूं ओलती मन का दीप।

उर संचित दुखमय सब राग
रखो देव अपना कुछ भाग
शीत समीर चलो कुछ मंद
भूल सकूं पीड़ा के छंद।

किसकी बाती कितना तेल
अरे पुलकमय कैसा मेल
आलिंगनरत जले समीप
टुकुर देखता तिमिर महीप।

दिन भर चमका हुआ न अस्त!
कहां गया वो पुंज समस्त?
मुझ में भी अब भरो न तेल
रचो देव मिटने का खेल।

किडनी दान ने बदला जीवन

लघु कथा:- संजय वर्मा "दृष्टि",

गर्मी के दिनों में छत पर सोया था। सपने में देखा कि गर्मियों की छुट्टियों में श्यामलाल के यहाँ उनकी साली आई। श्यामलाल की पत्नी की आवाज बहुत ही सुरीली थी। वह अपनी नन्ही सी बेटी को अक्सर लोरी गा कर सुलाती थी। पहले जब वह लोरी गा रही थी, तब श्यामलाल की सालीजी ने उस लोरी को रिकॉर्ड कर वीडियो बना लिया और सोचा, “दीदी इतना अच्छा गाती है, मैं घर जाकर माँ को दिखाऊँगी।” सालीजी कुछ दिनों बाद घर चली गई। कुछ समय बाद श्यामलाल की पत्नी को किडनी ख़राब होने से

बीमारी ने जकड़ लिया। काफी इलाज करने के उपरांत पति ने अपनी किडनी पत्नी को दे दी, जिससे वह बच गई। उस समय की स्थिति से सभी घर के सदस्यों की आँखों में अश्रु की धारा बहने लगी। ममत्व और भावना की परिभाषा किसी को समझाने की जरूरत नहीं पड़ी।

तभी श्यामलाल की आवाज कानों में सुनाई दी "भाई रामलाल, आज क्या बात है, बड़ी देर तक सोये हो। भाई, आज कौन सा सपना देखा?" रामलाल रोज कोई न कोई सपना, घटना भरी दास्ताँ के साथ सुबह सैर में अपने मित्र को सुनाता था। उसने कहा "भाई, आज तेरा ही सपना आया। उसमें देखा कि भाभीजी स्वस्थ्य हो कर घर आ गईं। पत्नी के अस्पताल में रहने के दौरान घर में बच्ची अकेली थी। जब बच्ची ने देखा कि माँ घर आई है, तो वह रोने लगी। पत्नी ने पूछा कि कैसे संभाला बच्ची को। पति ने कहा कि तुम्हारी गाई हुई लोरी को रिकॉर्ड कर लिया था, और जब बच्ची रोती थी तो मैं इसे सुना देता था।"

पति-पत्नी दोनों एक-एक किडनी से स्वस्थ्य थे और बच्ची के संग खुशियों के गीत गा रहे थे।

फुहार

लघु कथा:- विजयानन्द विजय

आज आनंद का मन बहुत उदास और अशांत था। आफिस में जिसे वह अपना सबसे प्रिय मित्र समझता था, उसने ही उसके मन को दुखी कर दिया था। महज एक छोटी-सी ही तो बात थी—एक प्रोग्रामिंग में अभिषेक को दिक्कत हो रही थी, उसने उसे दो मिनट में ठीक कर दिया और बस यूँ ही मित्रतावश बोल पड़ा—"क्या यार, इतना छोटा-सा काम तुमसे नहीं होता?" इसी बात पर अभिषेक ने बॉस के सामने तमाम कमियां गिनाकर उसे बुरी तरह जलील कर दिया। अब तो बातचीत भी बंद कर दी गई थी। दुखी मन से वह अपने केबिन में बैठ गया। आज का असाइनमेंट भी पूरा करना था, मगर वह खुद को कांसंट्रेट ही नहीं कर पा रहा था।

केबिन से निकलकर वह कैंटीन में आ गया और वेटर को एक कप कॉफी का ऑर्डर दिया। बाहर तेज़ वर्षा हो रही थी।
अपने बचपन के मित्र शिशिर की याद आ गई। कितने अच्छे दोस्त थे दोनों। ऐसी बारिश में कितनी बार भीगे होंगे वे, एक-दूसरे से कितना हंसी-मज़ाक करते थे। क्या-क्या नहीं बोल देते थे, और अगले ही क्षण ठठाकर हंस पड़ते थे। यह सब सोचकर आनंद को रूलाई आ गई।

स्कूल से लेकर कॉलेज तक दोनों ने साथ-साथ पढ़ाई की। जब नौकरी लगी, तो आनंद को बैंगलुरू जाना पड़ा। दूरी और काम की व्यस्तता—दो साल कैसे बीत गए, पता ही नहीं चला। यदा-कदा ही शिशिर से मोबाइल पर बात हो पाती थी, वो भी तब जब शिशिर फोन करता। व्याकुल होकर उसने शिशिर को फोन लगाया। उधर से आवाज आई—"अरे भाई आनंद! कितने दिनों बाद याद किया। कैसे हो यार? तुम्हारी बहुत याद आती है।"

"मैं भी तुम्हें बहुत मिस कर रहा हूँ।"
बोलते हुए आनंद रूआंसा हो गया, जिसे शिशिर ने महसूस कर लिया और पूछा—"कुछ परेशान लग रहे हो तुम? बताओ यार, कोई बात है तो?"

"नहीं, कुछ नहीं यार।"
खुद को संभालते हुए आनंद ने कहा—"मैं अगले हफ़्ते घर आ रहा हूँ।"
"बढ़िया। आओ, आओ। मैं भी इंतजार कर रहा हूँ।"
शिशिर की आवाज में खुशी को महसूस कर उसका मन हल्का हो गया।

स्टेशन से बाहर निकलकर उसने धूल से बचने के लिए मास्क लगा लिया और बस पकड़ी। बस स्टॉप पर उतरकर उसने आसपास देखा। इतने ही दिनों में काफी कुछ बदल गया था। चाय पीने की इच्छा हुई, तो पास वाले होटल में चला गया। वहां चाय पीने वालों की भीड़ लगी हुई थी।

पास जाकर उसने काउंटर पर चाय देने वाले लड़के से कहा "एक कप चाय मुझे भी देना।"

"जरूर।" लड़के ने कहा और चाय बनाने लगा।
गरमागरम चाय बढ़ाते हुए कहा—"लीजिए भाई साहब।" और फिर वह दूसरे ग्राहक को चाय देने लगा।

आनंद ने मास्क हटाया ही था कि लड़के की नजर उस पर पड़ गई और उसकी आंखें चौड़ी हो गईं। वह मचलकर आनंद के गले लग पड़ा—"अरे! आनंद! ऐसे! अचानक!" उसकी आंखों में आंसू थे। आनंद ने भी जोर से शिशिर को पकड़ लिया। दोनों की आंखों से अश्रुधार बह चली थी।

इस अश्रुधार में आनंद का सारा दुख-दर्द धुल गया और उसके मन का हर कोना प्रेम की भीनी फुहार से अभिसिंचित हो गया।

ज़िंदगी दुबारा

संस्मरण:- आशा भाटिया

बात 1988 की है। जुलाई का महीना था। तब स्कूल में 3+ बच्चों का दाख़िला हो जाता था। मेरा बेटा, जो साढ़े तीन साल का था, नर्सरी में पढ़ता था। चूँकि मैं स्कूल से 1:30 बजे के आसपास घर आती थी, इसलिए बेटा भी सीनियर विद्यार्थियों की बस में आता था, जो लगभग 2 बजे पहुँचती थी, और मैं उसे आराम से बस से उतार लेती थी।

एक दिन पति अवकाश पर थे। उन्होंने कहा कि आज मैं उसे लेकर आता हूँ। हो सकता है मुझे देख कर वह खुश हो जाए। मैं भी बेटे को बस से लेने साथ गई। अभी हम सड़क के इस पार ही थे कि सामने से बस आती हुई नज़र आई। इससे पहले कि हम सड़क पार कर पहुँचते, बस बच्चे उतार कर चली गई। यह देखकर हमारे पाँव के नीचे से ज़मीन खिसक गई कि बस से हमारा बेटा नहीं उतरा था।

दूसरे बच्चों से पूछा तो किसी ने संतोषजनक जवाब नहीं दिया, शायद इसलिए कि वह अभी नया था। पति भाग कर घर गए और स्कूटर लेकर आए। हम फ़ौरन स्कूल की ओर रवाना हो गए। मैं तो बदहवास सी हो गई थी। बुरे विचारों ने दिमाग़ पर अधिकार जमा लिया था। आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। बेचैनी के कारण पति स्कूटर भी तेज़ चला रहे थे।

स्कूल पहुँचे तो वहाँ सब कुछ बंद हो चुका था। हाँ, वहाँ आया ज़रूर, जिसने बताया कि—“मैंने स्वयं आपके बेटे को बस में बिठाया है, आप बस में देखें कि कहीं वह सो तो नहीं गया।” उसकी बात से थोड़ी राहत हुई। हम बस के मालिक के पास गए और सब बता दिया। उसने कहा कि बस में कोई बच्चा नहीं था और बस अब दूसरे स्कूल चली गई है।

उस समय फ़ोन या अन्य कोई संचार का माध्यम नहीं था जिससे सम्पर्क करना आसान हो। फिर भी मालिक ने कहा कि आप बच्चे की फ़ोटो ले आएँ, मैं किसी तरह कंडक्टर से सम्पर्क करने की कोशिश करता हूँ। अब हमारी हालत ज़्यादा ख़राब होने लगी—बच्चा कहाँ गया होगा? ऐसा लग रहा था कि ज़िंदगी हाथ से छूट रही है।

फ़ोटो लेने के लिए घर की ओर चल पड़े। हमारे घर से पहले मेरी दादी का घर आता था। वह अकेली रहती थीं, इसलिए अक्सर दोपहर के समय गेट पर ताला लगा कर रखती थीं। जैसे ही दादी का घर आया, मैंने देखा कि गेट खुला हुआ है और कमरे का दरवाज़ा भी खुला हुआ था। किसी अनजाने डर से हमने स्कूटर रोक कर अंदर जाकर देखा—वहाँ एक महाशय खड़े थे और मेरी दादी बेटे को बिस्कुट और पानी दे रही थीं।
बेटे को सही सलामत देख कर हमारी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैंने उसे उठा कर ढेर सारा प्यार किया। दादी कुछ समझ नहीं पाईं, तब हमने सब कुछ बताया।

अब बात बेटे की—वह यहाँ तक कैसे पहुँचा? दरअसल, बेटा अपने स्टॉप पर उतरने के बजाय एक स्टॉप पहले ही अन्य बच्चों के साथ उतर गया था और कंडक्टर ने भी ध्यान नहीं दिया कि यह बच्चा इस स्टॉप पर नहीं उतरता और उसे भी उतर जाने दिया। वहाँ मौजूद जब सब बच्चे अपने अभिभावकों के साथ जा रहे थे, तब उन महाशय का ध्यान हमारे बेटे की तरफ़ गया। उन्होंने नोटिस किया कि यह बच्चा पहले कभी नहीं उतरा और इसे लेने कोई नहीं आया।

उन्होंने बेटे से कुछ पूछा, तो वह ढंग से कुछ बता नहीं पाया। तब उन्होंने बस्ते में से डायरी निकाल कर फ़ोन किया। फ़ोन नंबर उनके ऑफिस का था और इत्तफ़ाक़ से वो उस दिन ऑफिस से अवकाश पर थे। अब उन महाशय ने हमारे घर का पता देखा और अपने स्कूटर से हमारे बच्चे को घर छोड़ने आए, लेकिन घर पर ताला लगा हुआ था। बेटे ने दादी के घर की ओर इशारा किया और कहा—“यह भी हमारा घर है।” महाशय ने देखा कि गेट खुला है, दादी अंदर हैं।

बेटे को दादी के घर छोड़ने के बाद हम पहुँचे और सारी जानकारी दी। हम सब ने उन महाशय का तहेदिल से धन्यवाद किया। बच्चे को सही सलामत अपने पास पाकर ऐसा लगा कि जैसे ज़िंदगी दुबारा मिल गई हो।

आज भी उस घटना को याद करके काँप जाती हूँ और मन ही मन ईश्वर और उस अनजान शख़्स का धन्यवाद करती हूँ। विद्यालय प्रशासन ने उस कंडक्टर के ख़िलाफ़ भी कड़ी कार्रवाई की।
"ज़िंदगी कभी-कभी अनजाने हाथों से फिर से मुस्कुराती है।"

कैनवास

लघु कथा:- अश्विनी देशपांडे

संध्या पूरे जतन से कागज़ पर अपनी कल्पना के रंग भरने की कोशिश कर रही थी। उसके सपने भी तो रंगों की तरह चटक लाल, चमकीला पीला, उगते सूरज से नारंगी थे। कितनी लगन से उसने इस प्रतियोगिता की तैयारी की थी। पर कक्षा में व्याप्त अव्यवस्था से आज उसका ध्यान बार-बार उचट रहा था।
वो, जो विधायक जी की बेटी है, उसे तो एक लकीर भी सीधी

खींचनी नहीं आती, फिर भी पता है प्रथम तो वही आएगी।
सर जो उसकी मदद कर रहे हैं, और हम, जो इतनी मेहनत से अपनी परीक्षा दे रहे हैं, हम पर ही पहरा है। दिखावा ऐसा कि सब व्यवस्थित तरीके से हो रहा है।

कुछ बच्चे तो तन्मयता से अपनी परीक्षा दे रहे हैं, कुछ ने इस सिस्टम का, हमारे मज़ाक बना रखा है। उन्हें पता है उनके चाचा-ताऊ किसी तरह से उन्हें पास करा ही लेंगे। हां, यह डर भी तो सता रहा है कि कहीं हमारे पेपर ही ना बदल दें।
हम इसी योग्य हैं। हमने ही इस लचर व्यवस्था को मौन स्वीकृति दे रखी है।

अब संध्या के रंग गहरे स्याह होते जा रहे हैं। तभी उसने अपने विचारों के घोड़ों को लगाम लगाई और उन्हें वापस कैनवस की तरफ मोड़ दिया।

"जब भ्रम और अव्यवस्था का असर छा जाए, तब भी सच्ची लगन और आत्म-नियंत्रण ही हमें हमारी मंज़िल तक पहुँचाता है।"

वो आने से रह गए

ग़ज़ल:- भानु झा

कुछ लोग यार आज आने से रह गए
और कुछ को तो हमीं बुलाने से रह गए
बस एक फ़ासला मिटाने से रह गए
इस तरह दोनों पास आने से रह गए
कुछ बातें आपने कभी पूछी ही नहीं
कुछ बातें तो हमीं बताने से रह गए
कुछ यूँ उलझ के रह गए इस ज़मीं से हम
जन्नत की राह हम बनाने से रह गए
दुनिया के दाँव-पेंच और जोड़-तोड़ में
हम जैसे कुछ मुक़ाम पाने से रह गए
कुछ भी कमी नहीं थी उनके हुनर में पर
दुनिया की नज़रों में वो आने से रह गए

जब भी स्मृतियों में आऊ

काव्य:- सुनील गज्जाणी

जब भी स्मृतियों में आऊँ, मुझे सुनना मत, कुछ पढ़ लेना
हर कवि की प्रेम कविताओं में हूँ, बस मर्म वो समझ लेना!
प्रेम मर्यादित, अपरिभाषित, प्रेम सागर-सा, पर्वत-सा भी
प्रेम की पीड़ा, प्रेम ही जाने, प्रेम एक विश्वास समझ लेना!
दूरियाँ भूगोल में हैं, मन तो कहें तेरे-मेरे प्रीत की कथा
रोम-रोम देह में तुम, रचे-बसे एक एहसास की तरह!
व्यक्त क्या करूँ या करूँ कुछ अपने प्रेम का नामकरण
अंतस प्रेम, प्रिय मेरा, हो तुम मेरी सांस, अरदास की तरह!

हक

लघु कथा:- विधि जैन

भवानी की शादी को कुछ साल हुए थे। भवानी का जीवन अच्छे से गुजर रहा था। उसकी एक बेटी थी और वह उसका पूरा ध्यान रखती थी—खाने, पीने, पढ़ने-लिखने सब का ध्यान रखती थी। अचानक गांव से उसके साथ ससुर आकर रहने लगे। उन्होंने कहा कि सिर्फ 8 दिन के लिए आया हूँ, लेकिन भवानी ने इतनी अच्छे से उनकी देखभाल की कि वह 2 महीने रुक गए।

जब वह दो महीने रुक गए तो भवानी और रमेश के बीच हर बात में वह टोकते और बोलते रहते। भवानी को अब यह सब बातें सहन नहीं होती थीं और उसने कई बार कहा कि “मम्मी, आप अपने काम से कम रखा करो,” लेकिन वह बिल्कुल भी नहीं मानतीं। भवानी और रमेश में कई बार लड़ाई भी हो जाती।

यह सब देखकर भवानी के साथ बहुत खुश होने लगे और धीरे-धीरे रमेश को अपने तरफ कर लिया। भवानी की हालत दिन पर दिन खराब होने लगी। उसको रात में नींद नहीं आती। कभी-कभी वह दिन भर यही सोचती रहती कि “मेरा इतना छोटा परिवार और इतने अच्छे से चल रहा था, ना जाने किस मनहूस की नजर लग गई।” और यह सोचते-सोचते उसे कभी-कभी बीपी लो होने लगा। भवानी की सास हमेशा कह देतीं कि “भवानी से काम अच्छे से नहीं बनता। कैसे तुम्हें खाना खिलाती होगी? अब मैं चली जाऊंगी तो तुम तुम्हारा कौन ध्यान रखेगा।” बेटा रमेश को भी लगता कि “हां, भवानी अच्छा खाना नहीं बनाती। कभी तो सब्जी में नमक ज्यादा कर देती है तो कभी दाल बहुत पतली कर देती है।”

रोज-रोज की किच-किच से तंग आकर भवानी ने कहा कि “मैं कुछ दिनों के लिए मायके रहने जाऊंगी।” तब रमेश ने कहा, “नहीं, तुम कहीं नहीं जाओगी।” और अक्सर अब रमेश डांटने लगा। पहले तो ऐसा कुछ भी नहीं होता था। रमेश को भवानी के हाथ का खाना बहुत अच्छा लगता था।

छोटी-छोटी बातों पर बहुत लड़ाई होने लगी। अब तो लड़ाई इतनी बढ़ गई कि भवानी और रमेश को अलग रहने की नौबत आ गई। सास-ससुर भी दोनों के बीच होने वाली अनबन का मज़ा लेने लगे।

एक दिन भवानी ने सोचा कि “मैं अपना हक अब वापस लेकर रहूँगी। मुझे भी कुछ करना होगा।” भवानी ने धीरे-धीरे बहुत अच्छे से सास-ससुर की सेवा करना शुरू किया और हर बात में जी की करके बात करने लगी। उसने सोचा कि किसी भी तरह से अब उन्हें गांव वापस भेजना पड़ेगा।

जब तक वह सोचती थी कि “माँ-बाप हैं, इन्हें अच्छे से सेवा करूंगी,” लेकिन आज समझ में आया कि माँ-बाप का स्थान कोई भी नहीं ले सकता। यह सोचते-सोचते भवानी की नींद लग गई। दूसरे दिन सुबह उठी और भवानी ने पूरा खाना तैयार किया। अपनी बिटिया को स्कूल छोड़ने चली गई और वहां से जब वापस आई तो देखा सास-ससुर वैसे ही बैठे थे। भवानी ने फिर उनको कल जैसा व्यवहार कर दिया। धीरे-धीरे भवानी ने अपनी सास से खुलकर बात करना शुरू किया और कहा, “मम्मी, यदि आप चाहते हैं कि हमारे घर में अच्छे से रहें, तो फिर अच्छे से रहिए, वरना आप लोग गांव जा सकते हैं।”

उसकी सास को यह बात बहुत बुरी लगी। भवानी की इन सब बातों का और धीरे-धीरे सास ने अपना नया रूप ले लिया और हर एक बात रमेश को बताने लगी। भवानी जो सोच रही थी, उसका उल्टा होने लगा।

भवानी को फिर से नहीं समझ में आया कि मैं कैसे अपने सास-ससुर को समझाऊँ कि हम लोगों का परिवार भी है, आप लोग रह

सकते हैं। उसने कई लोगों से सलाह ली, लेकिन सभी ने कहा कि "चुप रहकर अपना जीवन निकालो।"

एक दिन भवानी ने सोचा कि इतनी परेशानियां आ रही हैं, तो मैं जॉब कर लेती हूँ। उसने पास के स्कूल में अपना रिज़्यूमे दिया और वहां जॉब करना शुरू कर दी। सास को इस बात में भी बहुत परेशानी हुई कि भवानी जॉब करने जा रही है।

एक दिन सास की बहुत तबीयत खराब हो गई और डॉक्टर ने कहा कि उन्हें आराम की जरूरत है। भवानी अपना काम पूरा करके स्कूल के लिए निकल जाती थी। घर में एक नौकरानी रख दी गई थी, सास की सेवा के लिए। दिन भर वह घर देखती रहती। एक दिन अचानक नौकरानी ने छुट्टी ले ली और भवानी ने सास की पूरी सेवा करना शुरू किया। इस तरह से नौकरानी लगभग जॉब छोड़कर चली गई। अब भवानी के सिर पर बहुत सारी जिम्मेदारी आ गई—स्कूल के साथ-साथ सास की भी सेवा। कभी हाथ-पैर दबाना, कभी सर दबाना। यदि घर में भवानी नहीं दिखती थी तो सास कहती थी, "घर में भवानी नहीं रहती तो अच्छा नहीं लगता।"

भवानी सास को जूस बनाकर पिलाती थी, कभी अच्छे पकवान बनाकर खिलाती थी। इस तरह भवानी और सास अब करीब आ गए। धीरे-धीरे दोनों के रिश्तों में मिठास आने लगी। यह देखकर रमेश खुश होने लगा। अब घर में चिड़चिड़ी का माहौल खत्म हो गया और एक अच्छा परिवार बनने लगा।

भवानी ने अपनी हक की लड़ाई के लिए कई तरीके अपनाए, लेकिन जब सास को समझ में आया कि बिना बेटे और बहू के उनका काम नहीं चलेगा, तब जाकर भवानी ने जीत हासिल की। अपने हक की लड़ाई के लिए भवानी ने कई तरीके अपनाए, लेकिन दोस्तों, यदि हमें अपना हक अपने परिवार में चाहिए तो हमें भी कई बार कोशिश करनी पड़ती है। तभी हम अपने दिल में जगह बना पाते हैं।

•••

वह बेंच

लघु कथा:- डॉ. नीना छिब्बर

"अरमान बाग" का वह बैंच जो कोने के घने पेड़ के नीचे रखा था। आज उस पर रोमा पहली बार अकेली आई थी। चेहरे पर उदासी, आँखें नम, और दिल की धड़कनें रूकी-रूकी सी चल रही थी। अचानक स्वचलित मशीन की तरह हाथ पर्स में गया और लाल बॉलपेन बाहर निकाल कर बैंच पर कुछ लिखने को अपने आप

चल पड़ा। 9/2/2011 आज की तारीख लिखते हुए हाथ कांपा। नजरें उसके ऊपर लिखी तारीख पर रुक गई। 1/1/2003 एक आँख में आंसू और दूसरी आँख में पुराना मखमली सपना तैर गया। अमन और रोमा का जब परवान चढ़ा और उन्होंने सभी तरह से आश्वस्त होकर विवाह का निर्णय लिया, तो इसी बेंच पर बैठे थे। अमन ने कहा था कि हम एक और एक दो हो जाएंगे और फिर शरारती आवाज में बोला: "फिर तीन।" देखा रोमा संजोग, आज की तारीख भी एक प्रेम कहानी गढ़ रही है। कहानी आरंभ हुई।

दोनों बैंक में कार्यरत थे, बस जगह और पद का अंतर था। शुरुआत में सब ठीक था, फिर वही अहं, ईर्ष्या, तेरा-मेरा, तनाव, शब्द बाणों से मानसिक त्रास आरंभ हुआ। दोनों कोशिश करते सम पर आने की, पर आधुनिक समय की मशीनी जिंदगी जीत गई और भावनात्मक रिश्ता हार गया।
आज 9/2/2011 हो गया सबकुछ। वह बैंच दोनों तारीखों को सीने पर लिए मौन पड़ा रहेगा।

•••

दिवाली का दिवालियापन

व्यंग्य:- डॉ. मुकेश असीमित

दिवाली आ रही है। वैसे दिवाली का क्रेज़ बच्चों में था। अब उन्हें पहनने के लिए नए कपड़े, फोड़ने के लिए पटाखे, और चलाने के लिए फुलझड़ियां चाहिए। खाने के लिए दूध, मावे और चीनी की मिठाई चाहिए। अब तो दिवाली आते ही ग्रीन ट्रिब्यूनल वालों का रोना शुरू हो जाता है। AQI इंडेक्स एकदम सेंसेक्स की तरह उछलने लगता है। सुप्रीम कोर्ट हरकत में आ जाता है। पटाखे और फुलझड़ियां बेचारे गोदामों में घुटन में जीने को मजबूर हो रहे हैं। उधर आदमी AQI के बढ़ने की सूचना के साथ ही घुटन महसूस करने लगता है। प्रदूषण का धुआँ ठंडे बस्ते में बैठ जाता है।
अब दिवाली के एक महीने पहले और बाद तक जो भी प्रदूषण होगा, उसमें दोषारोपण पराली पर नहीं, वह जले या न जले, दोषारोपण तो पटाखों पर ही होगा। आम आदमी को टैक्स स्लैब में छूट नहीं मिलेगी, लेकिन बाजार में छूटों का पूरा पंडाल सजाया गया है। आप बिना टैक्स की छूट के भी इन छूटों का लाभ लेकर दिखाइए। दिवाली पर छूटों की बौछार चारों तरफ गले फाड़-फाड़ कर चिल्ला रही है। कोई आपके घर में फ्रिज, टीवी, वाशिंग मशीन, मोबाइल, जूसर, मिक्सर सब बदलना चाहता है।
दिवाली आएगी, तब आएगी, दिवाली की आड़ में दिवालियापन की दरकार बहुत पहले आ जाती है।

ऑफिसों में फाइल दबाए कर्मचारी राहत महसूस करते हैं। अब "दिवाली के बाद" का बहाना सरपट दौड़ेगा - "अब चक्कर लगाइए, साहब छुट्टी पर हैं... यार, आप दिवाली बाद आइए... इतनी सारी पेंडिंग लीव पड़ी है, साहब भी क्या करें... लेप्स हो जाएँगी। एनकैश करने साहब छुट्टियाँ बिताने बाहर गए हैं। छोटे बाबूजी को भी बोनस मिला है, तो वे भी परिवार के साथ निकल गए। अब आप भी दिवाली मनाइए इत्मीनान से। दिवाली बाद आना। लेकिन बाबूजी, दिवाली मनाएंगे कैसे अंधेरे में? घर का कनेक्शन कट कर रखा है। बिजली के बिल में गड़बड़ी थी, सुधार करवाने के लिए फाइल लगवा रखी है। आज दो महीने हो गए।"
"लेकिन क्या करें साहब भी, उनकी भी तो दिवाली है, भाई...। सबको अपनी-अपनी दिवाली मनाने की पड़ी है।"

मजदूर को मजदूरी दिवाली के बाद मिलेगी। क्या करें सेठ जी, पाँच दिन फैक्ट्री बंद रहेगी... उसकी भरपाई भी तो करनी है। फिर दिवाली सामने है, भला लक्ष्मी जी को ऐसे ही दूसरों के हाथों में कैसे जाने दें? लक्ष्मी जी को हर किसी ऐरे-गैरे नत्थू के हाथ में कैसे पकड़ा दें, बताइए?"
टीवी वाले और अखबार वाले नकली का रोना रोने शुरू कर देते हैं। नकली मावे की धर पकड़ शुरू हो जाती है। "कहाँ है मावा... मावा कहीं नजर नहीं आता... बस अधिकारी की भी दिवाली अच्छी-खासी मनाने का ध्यान रखते हैं सब मावा बेचने वाले। फूड इंस्पेक्टर की दिवाली तो नकली मावा पकड़ने से मनती है।"
अरे, जब देश में नकली नेता चल सकते हैं, नकली वादे चल सकते हैं, तो नकली मावा क्यों नहीं? नकली मावे की धरोहर में कितनों का रोजगार है। देखो, तब न्यूज़ वालों को न्यूज़ मिलती है। रिकॉर्ड ब्रेकिंग न्यूज़, डिबेट होती है। नकली के साथ असली माल रखा जाता है... असली माल की कीमत एकदम बढ़ जाती है। नकली आम जनता के लिए और असली नेता व अधिकारियों के लिए... इस दिवाली सबको कुछ न कुछ देकर जाएगी... गरीब को बीमारी, तो अमीर की जेब भारी।

नकली होगा तभी तो असली की पहचान होगी। लोग असली ढूंढ़ने निकलेंगे, दीया-सलाई लेकर। असली के चार गुना दाम देंगे। सोहन पापड़ी भी इतना कुछ झेलने के बावजूद भाव खा रही है। क्यों? क्योंकि उसका मुकाबला नकली मावे की मिठाई से है। क्या करें, गर्ग साहब! लाना तो हम देसी घी की शुद्ध मिठाई ही चाहते थे इस बार, लेकिन क्या करें? आपको तो पता ही है... देसी घी के नाम पर क्या गड़बड़झाला हो रहा है... इसलिए सबसे सुरक्षित है सोहन पापड़ी। वरना सोहन पापड़ी की हालत तो आप जानते ही हैं। सरकारी अस्पतालों से भी बदतर है। घर में एक बार आ जाए तो ऐसे पड़े रहते हैं जैसे सरकारी अस्पताल के पुराने बिस्तर।

सोहन पापड़ी हमें बताती है कि जो आज तुम्हारे पास है, कल किसी और के पास होगा। परसों किसी और के पास हो सकता है। घूम-घूमकर तुम्हारे पास हो आ जाए। यही जीवन चक्र है। दिवाली मुझे भी मनानी है, कैसे मनाऊँ? कई लोगों को उधार दे रखा है। मांगने जाता हूँ तो उनकी शक्ल मुझे घूरने लगती है। कहते हैं, "तुम्हें औकात नहीं है यार, दिवाली सर पर है। देखो, दिवाली के बाद यार, आप तो जानते हैं, लक्ष्मी दीवाली पर बाहर नहीं जाने देती।"

मैंने कहा, "भाई, हम भी दिवाली मना लेते, यार अपना ही तो मांग रहे हैं। तुम्हारे भाग्य की लक्ष्मी थोड़े ही मांग रहे हैं।"
दिवाली का असली मजा तो दिवाली के बाद ही है। डंप माल सस्ते में मिल जाता है। दिवाली की बची-खुची मिठाई सस्ते में मिल जाती है। जले हुए पटाखे और फुलझड़ियाँ भी अगर सुप्रीम कोर्ट ने रोक लगा रखी हो, तो दिवाली के बाद ही फोड़ोगे ना? अब रोज-रोज दिवाली नहीं होती। फिर एक दिन आँसुओं का रोना - जब जेब में पैसा हो तब मना लो दिवाली, जेब खाली तो काहे की दिवाली?

जनता रोए, संसद बोले

व्यंग्य:- इच्छा उपाध्याय

संसद को लोकतंत्र का मंदिर कहा जाता है। लेकिन आजकल संसद मंदिर कम और युद्ध का अखाड़ा ज़्यादा नज़र आता है। जनता महंगाई, बेरोज़गारी, बिजली-पानी, शिक्षा-स्वास्थ्य जैसी समस्याओं से व्याकुल होकर मर रही है, और संसद में उपस्थित माननीय सदस्य इन मुद्दों पर चर्चा करने के बजाय एक-दूसरे को नीचा दिखाने, अशब्दों का प्रयोग करने, माइक तोड़ने और नारे लगाने में व्यस्त हैं।

जनता को लगता था कि संसद में उसकी आवाज़ पहुँचेगी, लेकिन वहाँ तो सबको अपनी-अपनी आवाज़ ऊँची करने की पड़ रहती है। जो जितना ज़ोर से बोले, वही “जनता का असली हितैषी या हमर्दद” कहलाता है।

महंगाई पर सवाल पूछो तो जवाब मिलता है—
“आपके ज़माने में आलू कितने के थे?”

बेरोज़गारी पर चर्चा चाहो तो बहस इस पर होने लगती है कि किसने किसको कितनी बार कुर्सी से उठाया और किसने किसको कितनी बार पद से हटाया है।

अगर कभी स्वास्थ्य व्यवस्था की बात करे तो तुरंत उत्तर आता है कि जनता को उत्तम कोटि की व्यवस्था दिया गया है, दवाएं तो इतना उपलब्ध हैं कि जनता बिना भोजन के सिर्फ दवाओं से ही अपना पेट भर सकती है।

सत्र शुरू होते ही दृश्य किसी नाटक से कम नहीं होता। कभी एक पार्टी नारे लगाती है, तो दूसरी विपक्षी पार्टी उसके खिलाफ अशब्दों का प्रयोग करते हुए टेबल थपथपाकर जवाब देती है। माइक खींचना, पोस्टर लहराना और अशब्दों का प्रयोग करना तो अब नियमित दिनचर्या है। स्पीकर महोदय घंटी बजाते-बजाते थक जाते हैं, पर वहां पर मौजूद माननीयों का उत्साह कम नहीं होता। कभी-कभी तो ऐसा लगने लगता है कि तृतीय विश्व युद्ध यही शब्दों के माध्यम से शुरू हो जाएगा। और मानो यह संसद न होकर कोई नाटकीय मंच या वार्षिक खेलकूद प्रतियोगिता का मैदान हो।

संसद में उपस्थित कुछ लोग तो कैमरे की तरफ देखते रहते हैं कि कब कैमरा उनकी तरफ आएँ और जैसे ही कैमरा उनकी तरफ

आता है, तो वो महोदय दिखावटी गुस्से में आकर इतनी तेजी से चिल्लाने लगते हैं मानों सच्चे जनता प्रेमी यही हैं। और बाहर जनता सोचती है—"काश! इतना गुस्सा हमारी समस्याओं पर भी दिखाते।"

हर सत्र के बाद समाचार आता है—
"आज संसद की कार्यवाही हंगामे के कारण स्थगित।"
जनता के लिए यह भी एक राहत की खबर होती है, क्योंकि कम से कम आज नए टैक्स या नए क़ानून का बोझ तो नहीं बढ़ा और हमें उसके नीचे दबना तो नहीं पड़ेगा। जनता सड़क पर धूप में खड़ी है—बस का इंतज़ार कर रही है, सब्जी के बढ़ते दाम से झुंझला रही है, अस्पताल के बिल चुकाने के लिए क़र्ज़ ले रही है, युवा बेरोजगारी से व्याकुल होकर आत्महत्याएँ कर रहे हैं। और संसद के अंदर बैठे माननीय मानो किसी टीवी शो की रिहर्सल कर रहे हैं।

असल में आज के समय में संसद और जनता के बीच वही रिश्ता रह गया है जो टीवी सीरियल और दर्शकों के बीच होता है। कहानी चाहे कितनी भी बेकार हो, दर्शक का मन हो या न हो, उन्हें मजबूरी में देखना ही है, क्योंकि उनके टीवी का रिमोट उनके हाथ में नहीं है; वह कहीं खो गया है।

खुशियों भरी दिवाली

लघु कथा:- रेणु लेसी फ्रांसिस, इंदौर

विमला का मन आज सुबह से ही बैचैन था। उनकी बेटी अंजू ठीक एक साल बाद उनसे मिलने आ रही थी। अंजू इंजीनियर थीं और कम्पनी की तरफ़ से एक साल की ट्रेनिंग के लिए जर्मनी गई थी। विमला हर थोड़ी देर में अपने पति नीतिन से कह रही थी –
"जल्दी घर से निकल जाओ अंजू को लाने के लिए। रास्ते में ट्रैफिक ज़्यादा होता है, तुम समय पर नहीं पहुँच पाओगे, तो अंजू परेशान हो जाएगी।"

नीतिन उन्हें हर बार यही कहते –
"मुझे याद है अंजू आ रही है, लेकिन उसके आने में चार घंटे हैं। मैं अभी से वहाँ जाकर क्या करूँगा? जैसे आने का समय होगा, मैं आधे घंटे पहले पहुँच जाऊँगा।"

नीतिन समय से एयरपोर्ट पहुँच गए और अंजू के आने की खबर विमला को भी दे दी। जब से अंजू के आने की खबर मिली, विमला वहीं गेट पर बैठ गईं। उन्हें एक-एक पल मानो एक-एक साल जितना लंबा लग रहा था। अंजू को आए तो एक घंटा हो चुका था, लेकिन अंजू और नीतिन दोनों नहीं आए थे।

विमला दोनों को फ़ोन लगा रही थीं, लेकिन दोनों का फ़ोन नेटवर्क क्षेत्र से बाहर आ रहा था। विमला के पड़ोसी भी विमला के साथ थे। सभी परेशान हो रहे थे कि नीतिन और अंजू अभी तक क्यों नहीं आए। अचानक विमला के मोबाइल पर नीतिन का फ़ोन आया कि वह सिटी अस्पताल आ जाएँ — उन दोनों का एक्सीडेंट हो गया है।

विमला और उनके पड़ोसी सिटी अस्पताल पहुँचे तो देखा, अंजू का शव ऑपरेशन थिएटर से बाहर आ रहा था। डॉक्टर नीतिन से कह रहे थे –
"सॉरी, हम आपकी बेटी को नहीं बचा सके।"

तब नीतिन ने कहा –
"सर, मैं अपनी बेटी की आँखें दान करना चाहता हूँ ताकि मेरी बेटी की आँखें ज़िंदा रहें। आप किसी बहुत ज़रूरतमंद को ये आँखें दे दीजिए ताकि वह भी मेरी बेटी की आँखों से दुनिया देख सके।"

विमला ने इस बात का एतराज़ किया, तो नीतिन और डॉक्टर ने विमला को समझाया –
"उस व्यक्ति के बारे में सोचिए जिसने हमेशा अपने आस-पास अँधेरा ही पाया है। आप उसकी ज़िंदगी में रोशनी दे रही हैं।"
उस समय तो विमला ने कुछ न कहा, लेकिन वह अब भी नाराज़ थीं — अंजू की आँखें दान क्यों कीं, इस बात को लेकर।
आज अंजू की पुण्यतिथि थी। विमला का मन उदास था।

तभी नीतिन ने आकर उनसे कहा –
"आज हमारे घर एक खास मेहमान आने वाले हैं। तुम उनसे अच्छा व्यवहार करना।"

विमला कुछ पूछतीं, उससे पहले नीतिन वहाँ से जा चुके थे। थोड़ी देर बाद दरवाज़े पर दस्तक हुई। नीतिन ने दरवाज़ा खोला तो सामने एक पैंतीस साल का युवक खड़ा था — उसके साथ उसकी पत्नी और दो साल का बेटा भी था। नीतिन ने उन्हें अंदर बुलाया। उस आदमी ने नीतिन के पैर छुए। नीतिन ने उसे आशीर्वाद दिया और अपने सीने से लगा लिया —
"तुम हमेशा मेरे कलेजे का टुकड़ा रहोगे।"
उनकी आँखों में आँसू आ गए। तब उस आदमी ने कहा –
"पापा, मैं आपका बेटा हूँ और आप हमेशा मेरे पापा रहेंगे।"
नीतिन उसकी आँखों में ही देखते रहे। इनकी आवाज़ें सुनकर विमला भी वहाँ आ गईं। तब उस आदमी ने विमला के पैर छूने चाहे, तो विमला दूसरे कमरे में चली गईं। नीतिन ने कहा –
"हम दोनों मिलकर तुम्हारी मम्मी को मना लेंगे।"

नीतिन उन लोगों को लेकर विमला के पास आए। तब उस युवक ने कहा –
"मैं आपका और अंकल का हमेशा शुक्रगुजार रहूँगा। आपने एक नहीं, तीन लोगों की जान बचाई है।"

फिर उसने कहना शुरू किया –
"मेरा नाम राकेश है। मैं अपने पापा-मम्मी की इकलौती संतान था। हमारा जनरल स्टोर था, अच्छी-ख़ासी कमाई थी। मेरी शादी रीना से हुई — रीना भी अपने मम्मी-पापा की इकलौती संतान थी। देखने में जितनी सुंदर, व्यवहार में भी उतनी ही अच्छी। उसके आने से घर में हमेशा रौनक रहने लगी।

एक बार दिवाली के समय मेरा और रीना का परिवार हरिद्वार जा रहा था। तभी अचानक हमारी गाड़ी के ऊपर एक बड़ा पटाखा आकर गिरा और हमारी गाड़ी का एक्सीडेंट हो गया। मेरे और रीना के मम्मी-पापा उसी हादसे में मारे गए। मेरी आँखों में बारूद और काँच के टुकड़े जाने से मेरी आँखों की रोशनी चली गई। हमारा बेटा भी छोटा था। सारी ज़िम्मेदारी रीना पर आ गई।

रीना बच्चे को भी देखती और जनरल स्टोर भी संभालती। मैं उसके साथ स्टोर में बैठ जाता था। मेरे दोस्त, जिन्हें मैं भाई जैसा मानता था, उन्होंने भी अब अपना रास्ता बदल लिया। जैसे-तैसे जीवन की गाड़ी चल रही थी कि अब तो आवारा लड़के और फालतू लोग ज़्यादा ही स्टोर पर आने लगे। सामान एक लेते और कीमतें दस चीज़ों की पूछते। रीना को मजबूरी में सब दाम बताने पड़ते। वे लोग ज़्यादा समय रुकने के बहाने ढूँढते।

एक दिन तो हद हो गई। दो लड़के आए और सामान लेने के बहाने रीना का हाथ पकड़ लिया। रीना ने चिल्लाया तो मैंने उसे धक्का दिया, फिर वे मुझसे मारपीट करने लगे। इतने में अंकल जी स्टोर पर कुछ लेने आए, उन्होंने उन लड़कों को डाँटा कि अगर आइंदा ऐसी हरकत की तो पुलिस में दे देंगे।

उस समय तो वे चले गए, लेकिन उस घटना के बाद रीना बीमार

पड़ गई। तब अंकल जी ने कहा कि तुम कोई आदमी रख लो स्टोर पर काम के लिए। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे मित्र नेत्र-चिकित्सक हैं, मैं उनसे बात करूँगा कि वे तुम्हारी आँखों के लिए ऐसे व्यक्ति की तलाश करें जो मृत्यु के उपरांत अपनी आँखें दान करना चाहता हो।

मैंने स्टोर के लिए एक आदमी रख लिया था, लेकिन उसने भी हमारे साथ बेईमानी की — सारा सामान बेचकर स्टोर में ताला लगाकर भाग गया। तब रीना ने एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर ली। बहुत मुश्किल से गुज़र हो रही थी कि थोड़े दिनों पहले हमारे बेटे की तबीयत भी खराब हो गई थी।

अंजू का एक्सीडेंट हुआ, तब मेरा बेटा वहीं एडमिट था। वहीं अंकल जी ने मुझे देखा और अंजू की आँखें मुझे देने का वादा किया। आज मैं अंजू की आँखों से ही अपने बेटे और बीवी को देख पा रहा हूँ और उन्हें सुरक्षित जीवन दे पा रहा हूँ।"

इतना कहकर राकेश ने विमला के पैर पकड़ लिए और कहने लगा

"माँ, एक बार मेरी तरफ देखो, मैं भी आपका बेटा हूँ।"
राकेश के आँसू विमला के पैरों पर गिरे तो विमला ने उसे उठाया और जब उसकी तरफ देखा तो उन्हें लगा, वह अंजू को ही देख रही हैं। उन्होंने नीतिन को गले से लगा लिया। इतने में रीना भी विमला के पास आ गई और बोली –
"माँ, आप राकेश की नहीं, मेरी भी माँ हो।"

तभी पीछे से रीना का बेटा आ गया और बोला –
"आप मेरे मम्मी-पापा की माँ हो, तो मेरी कौन हो?"
पीछे से राकेश ने कहा – "ये तुम्हारी दादी माँ हैं।"

विमला ने उन तीनों को गले लगा लिया और कहा –
"मुझे तुम लोगों ने माँ कहा है तो मेरी एक बात मानोगे?"
रीना ने कहा –
"माँ, आप आज्ञा तो दो, हम आपके लिए जान तक दे सकते हैं।"
विमला ने कहा –
"जान देना नहीं है, बस मेरी जान बनकर मेरे साथ मेरे घर में रहो। अंजू हमेशा कहती थी कि वह हमें छोड़कर कहीं नहीं जाएगी। इसलिए ही भगवान ने तुम्हें मेरे पास भेज दिया।"

रीना ने कहा –
"ठीक है माँ, हम लोग कभी भी आपको छोड़कर नहीं जाएँगे। मेरा तो मायका भी यही है और ससुराल भी यही।"
इतना सुनकर विमला ने अंजू की तस्वीर के सामने झुककर कहा

"बेटी, तूने तो मेरी झोली खुशियों से भर दी। आज मुझे बेटे के साथ बहू और पोता भी मिल गया।"

अब विमला बोलीं –
"मैं भी डॉक्टर के पास जाकर अपनी आँखें दान करने वाला फ़ॉर्म भरकर आऊँगी।"

नीतिन ने कहा –
"तुम अकेली नहीं, हम सब चलेंगे, ताकि हमारे मरने के बाद हमारी आँखें ज़िंदा रहें।"

सबको खुश देखकर विमला ने कहा –
"ये दिवाली तो मेरे लिए हज़ारों खुशियाँ लेकर आई है।"
•••

चाय-पानी

लघु कथा:- अर्विना गहलोत

हरिया आज अपनी फसल को मंडी में बेचने जा रहा था। शहर में घुसने वाले रास्ते पर एक अफ़सर खड़ा था।
"ऐ भाई, गाड़ी रोको।"
"परमिट के बिना गाड़ी अंदर नहीं जा सकती," अफ़सर ने कड़क आवाज़ में कहा।
"साहब, देख लीजिए, सारे कागज़ पूरे हैं।"

"अच्छा, चाय-पानी के पैसे ही देते जाओ।"
मन ही मन हरिया सोचने लगा, "मेरी मेहनत की कमाई ऐसे कैसे लुटा दूँ?" हरिया ने मजबूरन कुछ नोट अफ़सर की तरफ़ बढ़ा दिए, तब जाकर गाड़ी आगे बढ़ी। दुःखी मन से पैसे दे तो दिए, लेकिन मन पर बोझ था। इस "चाय-पानी" के खेल में वह अकेला नहीं है। भ्रष्टाचार का घुन हर किसी की मेहनत को धीरे-धीरे खा रहा।
•••

मात पिता को देवता जानो

काव्य:- डॉ. गोपाल प्रसाद 'निर्दोष'

मात-पिता की स्मृति को नमन करती हुई एक कविता

मात-पिता जो कुछ कह दें
मात-पिता का कहना मानो
मात-पिता हैं तुम्हारे सामने
मात-पिता को देवता जानो
मात-पिता हैं तुम्हारे सामने
मात-पिता को देवता जानो
मात-पिता ने हमको जन्मा
मात-पिता हैं जनक हमारे
उन्होंने ही हमें है पाला पोसा
मात-पिता को करता मानो
मात-पिता हैं तुम्हारे सामने
मात-पिता को देवता जानो
उन्होंने हमें हैं जीना सिखाया
देश के हित मरना सिखाया
जनहित को जो लड़ना पड़े
सर्वहित को तुम युद्ध ठानो
मात-पिता हैं तुम्हारे सामने
मात-पिता को देवता जानो
जिनके मात-पिता होते नहीं
जीते नहीं, चैन से सोते नहीं
मिलते नहीं, फिर वे कहीं नहीं
चाहे दर-दर की खाक छानो
मात-पिता हैं तुम्हारे सामने
मात-पिता को देवता जानो
उनके जीते जी तू रे जी ले
उनके रहते खा ले रे पी ले
छोड़ दे 'निर्दोष' तू तीर्थ व्रत
एक उन्हें मान देव सयानों
मात-पिता हैं तुम्हारे सामने
मात-पिता को देवता जानो

मित्रता दिवस

कविता: श्वेता विशाल झा

हमारे ज़माने में मित्रता दिवस नहीं होता था,
पर मित्र होते थे।

कभी न मिटने वाली सुनहरी यादों के
हृदय में चित्र होते थे।

एक-दूसरे के घर बिन रोक-टोक आना-जाना होता था,
सांझ ढले तक दोस्तों संग बतियाना होता था।

स्कूल जाते थे पैदल और संग प्रार्थना गाते थे,
लौटते समय तो पूरे रस्ते हँसते-खिलखिलाते थे।

एक-दूसरे का लंच मिल-बाँट कर खाना था,
सबके डिब्बों में घर का साधारण खाना था।

जो पहले पहुँचती, उसको एक काम ज़रूर करना था
अपनी पक्की सहेलियों की सीट छेक कर रखना था।

फ्री पीरियड अक्सर ही मिल जाते थे,
क्योंकि हम बालिका उच्च विद्यालय सरकारी स्कूल जो जाते थे।

और फिर खूब धमाचौकड़ी होती थी
कभी अंताक्षरी, कभी कॉपी फाड़ के
कागज़ की नाव बनती थी।

ओरिगेमी के हम पक्के कलाकार थे,
कागज़ की नाव, चिड़िया, एयरोप्लेन बनाने में होशियार थे।

एक बार मनीषा नई फिल्म "डीडीएलजे" देख के आई थी,
क्लास में बैठ के बड़े मनोयोग से
उसने हमें उसकी कहानी सुनाई थी।

सरस्वती पूजा में सभी लड़कियाँ बन-ठन कर आती थीं,
गर्ल्स स्कूल की लड़कियाँ साड़ी, बिंदी, लाली में ग़ज़ब ढाती थीं।

संस्कृत वाले सर से कोई लड़की नहीं डरती थी,
ज़रा-सी ज़िद पर उनसे रोज़ कहानी सुनने को मिलती थी।
हिंदी वाली इंदु दीदी का घोर आतंक छाया था,
उनके पीरियड में कभी परिंदा भी पर न मार पाया था।

हम सभी हँसते-बतियाते,
एक-दूसरे को अपने सपने भी बताते।
किसी को डॉक्टर, किसी को प्रोफेसर बनना था,
नन्हें पंखों से बड़ी उड़ान भरना था।

फिर धीरे-धीरे हम बड़े होते गए,
और हमारे सपने छोटे होते गए।

एक-एक करके सबकी आँखों के कोर गीले हो गए।
छोटे शहर की लड़कियाँ थीं हम...
आत्मनिर्भर बनने से पहले ही
सबके हाथ पीले हो गए।

फिर सभी अपनी ज़िंदगियों के संघर्षों में उलझ गईं,
पर जब भी मौका मिला, बस यादों में खो गईं।

बचपन की वो मासूम दोस्ती भुलाए नहीं भूलती,
आज भी नज़रें किसी मासूम की दोस्ती में अपनी वो छवि ढूँढती।

इशरत, तलत, मनीषा, रूपा, सिंकी,
श्वेता आनंद, सोना, प्रीति, रिंकी,
शैलजा, अंजलि, नीतू, कहकशां और कृष्णा
जाने कहाँ गुम गईं ज़िंदगी की धूप-छाँव-सी वो सखियाँ।

कितने नाम, कितने चेहरे यादों में आ जाते हैं,
जब मित्रता दिवस के संदेश कहीं दिख जाते हैं।

राहत इंदौरी : आवाम का शायर

संस्मरण:- डॉ. कविता नन्दन

बात उन दिनों की है जब शादी-ब्याह जैसे कार्यक्रमों में रात के वक़्त वीडियो चलाने का चलन ज़ोर पर था। आमतौर पर मुस्लिम शादियों का कार्यक्रम दिन भर में ही पूरा कर लिया जाता और देर शाम या फिर रात होते-होते बारात दूल्हन लेकर वापिस आ जाती थी, लेकिन दूर की शादियों में सुरक्षा को देखते हुए बारात रात में ठहर कर सुबह ही चलती।

1988 में एक शादी में शामिल होने के लिए मैंने दिल्ली से लखनऊ की यात्रा की। शादी का कार्ड हाथ में लिए पूछते-पूछते सही ठिकाने पर पहुँच गया। यह जगह लखनऊ के शिया कॉलेज से करीब दो किलोमीटर की दूरी पर थी। रास्ता पूछने के दौरान ही

यह पता चला कि यहाँ मुशायरा होने वाला है।

बारात करीब नौ-साढ़े नौ बजे खाने के लिए गई और इसी दौरान मुशायरे का लाउडस्पीकर लय पकड़ चुका था। मैं बचपन से ही मुशायरा सुनने का शौकीन था। नतीजा यह हुआ कि जल्दबाजी में आधा-अधूरा खा कर दूल्हे से इल्तिज़ा की — "भाई! मुशायरा देखने जाना है।" बेचारा मेरे चेहरे को देखता रह गया। थोड़ी देर बाद बोला — "यहाँ वीडियो का इंतज़ाम किया गया है।"
मैंने कहा — "फ़िल्में परदे पर देखता हूँ, मुझे जाने की इजाज़त दे दो भाई।"

उसने कहा — "अब्बू को पता न चले वरना मेरी शामत आ जाएगी।"
...और इस तरह मैं मुशायरे में पहुँच गया।

यह साल 1988 था। मैंने पहली बार इसी मुशायरे में डॉ. राहत इंदौरी साहब को मंच पर बिलकुल करीब से देखा और सुना। शायरों के बीच मुशायरा पढ़ने का उनका अंदाज़-ए-बयाँ इतना अलग और लाजवाब था कि जब तक वे सुनाते रहे, एक जादू-सा तैर रहा था और जब बैठे तो ऐसा लगा जैसे मुशायरा ख़त्म-सा हो गया। मैं बस उन्हें देखता ही रह गया।

इस मुशायरे से पहले भी कई मुशायरे देख और सुन चुका था, लेकिन शायरी को लेकर मेरे नज़रिए को बदलने वाला यह पहला मुशायरा था। इससे पहले भी मैं नज़्म और ग़ज़लें लिखता था, मगर अब लिखने और कहने के तरीक़े में ज़बरदस्त तब्दीली आ गई। इसके बाद राहत इंदौरी साहब को मैंने काशीपुर के हरि पैलेस वाले मुशायरे में सुना। यह मुशायरा मेरे लिए एक ख़ूबसूरत हादसा था। भीड़ इतनी थी कि मुझे बैठने की जगह नहीं मिल रही थी और मैं चाहता था कि करीब से देख सकूँ। मुशायरा शुरू होने से पहले लोगों का हुजूम जिस तरह उमड़ा था कि धक्कम-धुक्की वाली भीड़ में फँस गया था।

किसी तरह बाहर आकर टेंट वाले से सिफ़ारिश की तो उसने सीधे आयोजक से ही भेंट करा दी। जब आयोजक को पता चला कि हज़ार किलोमीटर दूर से मुशायरा सुनने आया हूँ तो उसने मुस्कुराकर कहा — "आपको बैठने की जगह भी मिलेगी और इंदौरी साहब से आपकी मुलाक़ात भी करवाऊँगा।"
राहत साहब जब आए तो उसने उनसे कहा — "यह नौजवान दिल्ली से आपका दीदार करने आया है।"
राहत साहब ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा — "यही मोहब्बत तो मेरी असल कमाई है।"

यह मुलाक़ात मेरी दीवानगी का सबब बन गई। इस मुलाक़ात के बाद तो जैसे ही ख़बर मिलती कि फलाँ जगह मुशायरा है और उसमें राहत इंदौरी साहब शिरकत करेंगे, तो मैं हर हाल में पहुँचने की कोशिश करता। मैंने महसूस किया कि मेरे जैसे उनके हज़ारों

दीवाने हैं जो जाने कहाँ-कहाँ से उन्हें सुनने के लिए चले आते हैं — ललितपुर, बनारस, लखनऊ, दिल्ली, चंडीगढ़, जाने कहाँ-कहाँ।

उनकी शायरी हिन्दुस्तान की आवाम की शायरी थी। इसीलिए जब तक वे मंच पर होते, लोग उन्हें सुनने के लिए दीवानों जैसी हरकतें करने लगते। वे मंच से ही ऑडियंस को संबोधित करते और लोग उनकी बातों को संजीदगी के साथ मानते।
उनके चाहने वालों की कोई एक उम्र नहीं थी, बल्कि उनमें एक ही बात कॉमन थी — कि उन्हें डॉ. राहत इंदौरी की शायरी में अपने जज़्बात बुलंदियों पर मिलते हैं। जब वे कहते हैं —
"आप हिन्दू, मैं मुसलमान, ये ईसाई, वो सिख,
यार छोड़ो ये सियासत है, चलो इश्क करें।"

तो यह बात उस सांप्रदायिक कट्टरपंथी सियासत के मुँह पर लाखों जूते एक साथ मारती है जो हिन्दुस्तान की गंगा-जमुनी तहज़ीब को गंदला करने की कोशिश करती है। वहीं दूसरी ओर यह हिन्दुस्तान की आवाम और उसकी संस्कृति की मिसाल पेश करती है, जो यहाँ के ज़र्रे-ज़र्रे में मौजूद है।

बात 1994 की है। इसी साल मेरा पहला ग़ज़ल संग्रह "रोशनी की तलाश जारी है" प्रकाशित हुआ था। यूँ तो हिन्दुस्तानी तहज़ीब के इस दौर के सभी बेहतरीन शायर मुझे पसंद हैं — ख़ास तौर से वसीम बरेलवी साहब, मुनव्वर राना साहब, जावेद अख़्तर साहब, निदा फ़ाज़ली, गुलज़ार साहब, अंजुम रहबर जैसे लोगों की शायरी में मेरी दिलचस्पी रही है — लेकिन डॉ. इंदौरी से एक अलग तरह की मोहब्बत हो चुकी थी।

मैं अपना ग़ज़ल संग्रह लेकर उनके घर चला गया। इत्तेफ़ाक़ से वे मौजूद भी थे। जब मैंने आने की वजह बताई तो बेहद ख़ुश हुए। उम्र में वे मुझसे पंद्रह-बीस साल बड़े होंगे, लेकिन जिस तरह मेरे कंधे को पकड़ कर बिठाया, वह अंदाज़ किसी हमउम्र दोस्त जैसा था। इतने बड़े शायर से ऐसी मोहब्बत पाकर कौन नहीं पागल हो जाएगा! सफ़र की थकान एक पल में मिट गई।

उन्होंने किताब के पन्ने पलटे, देखा, मुस्कुराए... एक ग़ज़ल के मत्ले पर ऊँगली रखते हुए कहा —
"यह अच्छा कहा है —
मौत से आँखें मिला कर के जिए जाता हूँ,
ज़िंदगी तुझ से गिला फिर भी किए जाता हूँ।"
(रोशनी की तलाश जारी है)

पूरी किताब में एक शेर चुनकर उनका यह कहना मेरी ज़िंदगी में बहुत बड़ी ख़ुशी दे गया। उस आधे घंटे की मुलाक़ात में उन्होंने अपनी मोहब्बत से मुझे बहुत कुछ दे दिया। मेरी ख़ामियों को जिस तरह से समझाया, उसने मेरी कहन के अंदाज़ को भी बदल दिया। उनका मोहब्बत भरा यह सुलूक हर उस इंसान के साथ मैंने देखा जो उनके पास बतौर इंसान मिलने गया हो। उन्हें मुशायरे में भी मैंने मंच पर और मंच के पीछे कभी किसी से उखड़ी बात करते हुए नहीं देखा, लेकिन उन्होंने एक बार कहा था —
"सियासत ने हिन्दुस्तान को बरबाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।"

यह कहते हुए उनका चेहरा सख़्त हो गया था। उससे लगता है कि उन्हें जब गुस्सा आता होगा तो जबरदस्त आता होगा। कहने-सुनाने को उनसे जुड़ी तमाम बातें हैं मगर इस छोटे से लेख की अपनी सीमा है। कशिश वारसी साहब का शुक्रिया अदा करना चाहूँगा, जिनकी बदौलत अपने चहेते शायर और हमदर्द उस्ताद को श्रद्धांजलि देने का मुझे मौका मिला।

मुझे उनकी कई ग़ज़लें ज़बानी याद हैं, लेकिन वह ग़ज़ल तो इस दौर की जान बन गई है। आज बच्चे-बच्चे की ज़ुबान से यही सुना जा रहा है —
"सभी का ख़ून है शामिल यहाँ की मिट्टी में,
किसी के बाप का हिन्दोस्तान थोड़ी है।"

•••

कोई नहीं सुनता

कविता:- अश्वनी राघव, रामेंदु

बात यह है, कोई बात नहीं सुनता,
कह सब रहे हैं,
किसी की पर, कोई नहीं सुनता।
लोग सुनाते हैं माइक को, कुर्सियों को, मोबाइल को,
आदमी बैठा साथ, नहीं सुनता,
वह केवल प्रतीक्षा करता है
कुछ कह पाने की,
पर मसला यह है कि
उसकी भी कोई नहीं सुनता।

•••

सर्द सुबह की स्मृतियाँ

कविता:- मनु वाशिष्ठ

याद आती हैं,
सूरज से भी पहले उठना,
गाय का रंभाना,
गर्म चाय में उठती भाप,
गुड़, अदरक, लौंग की महक,
जिसके ख़याल मात्र से,
एक नशा-सा छा जाता।
तुम्हारे रूई से मुलायम,
सफेद बादल से बाल,
पहाड़ों पर रुकी बारिश,
अलसाया-सा सूरज,
कानों को चीरती हुई
ठंडी तीखी हवा,
रूह को कंपा जाती।
छाती में सांसों को
जमा देने वाली ठंड,
खुश्की से फटे सुर्ख गाल,
पैरों में रेंगती चींटियाँ,
और सूजी हुई अंगुलियाँ,
बरतनों की खटर-पटर,
घर्र-घर्र चक्की की आवाज़ —
सब याद आ जाता।
कुछ खो आया था मैं —
गांव की वो सर्द सुबह,
गुनगुनाते भजन,
और घंटी की आवाज़,
धुंधलाए चश्मे को साफ करतीं
तेरी यादों का सिलसिला...
हाँ मां! मेरी प्यारी मां!
तू हरदम मेरी सांसों में बसी है,
मेरी साँसें जो रह गई हैं
गांव में — तुझ में,
और मैं बसा हूँ
यहाँ इमारतों के बेजान शहर में।

•••

स्मृतियों का आभार

कविता:- पल्लवी दीपक म्हात्रे

दिल की गहराइयों में थमे हुए तूफ़ान को उठते देखा,
अधूरी ख़्वाहिशों का कारवाँ चलते हुए देखा।
अपनी ही नज़रों में उम्मीद के जुगनू को चमकते देखा,
आज आँसुओं को मुस्कुराते हुए पहली बार देखा।
पुरानी डायरी के ज़रा-से पन्ने क्या पलटे मैंने,
हर शब्द ने साँसें लेने पर मजबूर कर दिया।
साहिब से पहली मुलाक़ात का किस्सा जब पढ़ा,
सूखे सुर्ख़ गुलाब की पंखुड़ियों की महक ने दिल चुरा लिया।
स्मृतियों का आभार जताऊँ तो कैसे जताऊँ,
उन्होंने आज मुझ पर एक एहसान किया।
बरसों से रुकी थी जो कलम मेरी,
उसे फिर से लिखने पर मजबूर कर दिया।
अब की बार चली जो कलम मेरी,
दुनिया भर की खुशियों से झोली भर गई।
रुकी-रुकी-सी जो ज़िंदगी थी मेरी,
वो फिर से तेज़ी से दौड़ने लगी।

•••

शुभ

लघुकथा:- पवित्रा अग्रवाल

परिवार वालों के बार-बार आग्रह पर सुधा ने बच्चे के जन्म का सही समय जानने का विशेष ध्यान रखा था। फिर बेटी के जन्म का सही समय व दिन पंडित जी को बता कर उसकी जन्मपत्री बनवाई गई थी।

जन्मपत्री में लिखा था:

“कन्या बहुत भाग्यशाली है... परिवार में सुख-समृद्धि आएगी... पिता के लिए बहुत शुभ होगी। उसको दो बहन व एक भाई का सुख मिलेगा।”

सुधा हंसी थीं, दो बहन व एक भाई का सवाल ही नहीं है। बस एक बहन या एक भाई और होगा।

एक महीने बाद ही उसके पति बीमार पड़ गए। डॉक्टर के अनुसार हार्ट के दो वाल्व खराब हो गए थे। इलाज में पैसा पानी की तरह बहता रहा। ऑपरेशन के दौरान पति की मृत्यु हो गई।

•••

ज़ीरो नंबर आया है

संस्मरण:- सरिता सुराणा

बात तब की है, जब मैं कक्षा नौवीं में पढ़ती थी। हमारा स्कूल शहर से करीब तीन-चार किलोमीटर दूर था। हम लोग बस से ही स्कूल आते-जाते थे। हमारा स्कूल सिर्फ लड़कियों का स्कूल था, इसलिए टीचर्स भी महिलाएँ ही थीं। केवल गणित विषय पढ़ाने के लिए बॉयज़ स्कूल से मास्टर जी आते थे। हम लोग मास्टर जी से बहुत डरते थे और उनके सामने बोलने की हिम्मत किसी में नहीं थी। जब भी टेस्ट और परीक्षाएँ होतीं, मास्टर जी सबसे अंत में नंबर सुनाते थे, यानी कि रिज़ल्ट देते थे। उस समय नंबर सुनने का कितना उत्साह रहता था, उसे मैं शब्दों में बयाँ नहीं कर सकती। कौन फ़र्स्ट पोज़िशन पर है और कौन सेकंड, यह उत्सुकता हमेशा बनी रहती थी, क्योंकि अक्सर हम दो-तीन लड़कियों में से ही आधे या एक नंबर से आगे-पीछे चलती थीं। उस समय आधे नंबर की भी कितनी वैल्यू थी, ये सिर्फ हम ही जानते हैं।

जब अर्द्धवार्षिक परीक्षा हुई तो मैंने अनजाने में उत्तरपुस्तिका के पहले पेज पर बनी पूर्णांक और प्राप्तांक की तालिका को यह सोचकर जैसे का तैसे भर दिया कि मेरे सारे सवाल पूर्णतः सही हैं। परीक्षाएँ समाप्त होने के बाद कुछ दिनों में सभी विषयों की उत्तरपुस्तिकाएँ मिल गईं, सिर्फ गणित की ही बाकी रही। सभी लड़कियों को उसका बेसब्री से इंतज़ार था। खैर, दो-तीन दिन बाद इंतज़ार खत्म हुआ और मास्टर जी कॉपियों का बंडल लेकर आए। उस दिन सबके चेहरे पर खुशी थी कि आज मैथ्स का रिज़ल्ट मिलेगा।

मास्टर जी हमेशा फ़र्स्ट, सेकंड और थर्ड का नाम बोलकर बाकी की कॉपियाँ मॉनिटर को दे देते थे, सबको बाँटने के लिए। उस दिन मास्टर जी ने ऐसे ही सबकी कॉपियाँ दे दीं और मेरी कॉपी अपने पास रख ली। जब सबको कॉपियाँ मिल गईं और मुझे नहीं मिलीं तो मैं एकदम से डर गई। मैंने डरते-डरते मास्टर जी से पूछा — "मेरी कॉपी नहीं आई...।"

उन्होंने मुझे डाँटते हुए कहा — "तुम्हें कॉपी नहीं मिलेगी क्योंकि तुम्हारे ज़ीरो नंबर आए हैं।"
अब तो मैं और ज़्यादा डर गई और सोचने लगी कि मैंने तो सारे सवाल सही किए थे, फिर ज़ीरो नंबर कैसे? लेकिन मास्टर जी के सामने बोलने की हिम्मत नहीं हुई। मैं रोने लगी तो मास्टर जी ने सबको मेरी कॉपी दिखाते हुए कहा — "देखिए, इस लड़की ने अपनी कॉपी खुद ही जाँच ली है, इसलिए मैंने इसे ज़ीरो नंबर दिया है।"

जब मुझे अपनी गलती समझ में आई तो मैंने मास्टर जी से माफ़ी माँगी। तब उन्होंने मुझे समझाते हुए कहा — "देखो, यहाँ पर तो मैं तुम्हारी गलती माफ़ कर दूँगा लेकिन दसवीं कक्षा के बोर्ड एग्ज़ाम में अगर तुमने ऐसी गलती की तो एग्ज़ामिनर तुम्हें ज़ीरो नंबर देगा और फिर उसे ब्रह्मा जी भी नहीं बदल सकते।"

उनके कहे हुए शब्द मुझे आज भी ज्यों के त्यों याद हैं।
फिर सबके सामने उन्होंने मुझे प्रथम घोषित किया और आगे से फिर कभी ऐसी गलती न करने को कहा। सच में, नादानी में की हुई वह गलती मेरे लिए एक अविस्मरणीय सबक बन गई। अगर मास्टर जी मुझे इसके बारे में जानकारी नहीं देते तो शायद आगे भी मैं वही गलती बार-बार दोहराती और उसका परिणाम क्या होता, यह आप और मैं सब जान ही गए हैं।

आज भी जब उस घटना को याद करती हूँ तो खुद पर हँसी आती है, क्योंकि उस समय मैं मात्र 13 वर्ष की थी और कोई विश्वास नहीं करता था कि मैं अगले साल बोर्ड का एग्ज़ाम दूँगी। आज भी मास्टर जी के प्रति सिर श्रद्धा से झुक जाता है, जिन्होंने अच्छी पढ़ाई के साथ-साथ अच्छा ज्ञान भी दिया और जीवन में आगे बढ़ने की हिम्मत भी।
ऐसे गुरुजनों के प्रति श्रद्धाभाव से नमन।

रेखा के पार

कहानी:- पवित्रा अग्रवाल

स्टेशन पर उतरते ही निगाहें भाई को तलाशने लगी थीं। भले ही घर दूर नहीं है, जगह भी जानी-पहचानी है, घर अकेली भी आसानी से पहुँच सकती हूँ फिर भी विश्वास था कि भाई जरूर आयेंगे। अब तो उनके पास कार भी है, हो सकता है भाभी भी साथ आ जाएं। किसी को भी न पाकर मन उदास हो गया।

ऑटो कर के पहुंची तो घर पहचान नहीं पाई, शायद पूरा तुड़वा कर नए सिरे से बनवाया गया है। नेम प्लेट पढ़ कर डोरबेल बजाई तो दरवाजा एक नेपाली ने खोला और पूँछा – "आप मीता मेमसाहब है न, साहब की बहन?"
मेरे हाँ में सिर हिलाने पर वह मेरा सामान अन्दर ले गया और बोला, "साहब और मेम साहब घर पर नहीं हैं, दो-तीन घंटे में आ जायेंगे, विक्की बाबु कालेज गए हैं।"

भाई-भाभी के कई बार किए गए आग्रह पर इस बार मैंने यहाँ आने का मन बनाया था, लेकिन बच्चों ने मूड ख़राब कर दिया – ‘आप को जाना है तो जाओ, हमें वहां बोर होने नहीं जाना’। तब पति ने हिम्मत बंधाई थी – ‘घर व बच्चों की चिंता मत करो... पांच-छह दिन मैं संभाल लूँगा, तुम मिल आओ।’ फिर भी बच्चों को पहली बार अकेला छोड़ कर आते मन दुखी था। इसी लिए पांच दिन का प्रोग्राम बनाया था। दो दिन आने-जाने के हो गए, तीन दिन यहाँ रह लूंगी।

घर आये मुझे दो घंटे हो चुके थे, स्नान करके खाना भी खा चुकी थी, पर भाई ने फोन द्वारा यह जानने की भी औपचारिकता नहीं निभाई थी कि मैं घर पहुंची भी हूँ या नहीं। आते ही भाभी ने कहा – "सौरी मीता, हम तुम्हें घर में नहीं मिल सके, हमारे एक मित्र सपरिवार चार वर्ष बाद विदेश से आये हैं। हम उन्हें डिनर पर बुलाना चाह रहे थे, लेकिन शाम को वे फ्री नहीं थे, इसलिए होटल में उन्हें लंच पर बुला लिया। हम लोग विक्की को भी पढ़ाई के लिए विदेश भेजना चाह रहे हैं... इन मित्रों से कुछ मदद मिल सकती है। लंच के बाद उन्हें उनके घर तक छोड़ना पड़ा... बस इसी में देर हो गई। तुमने खाना तो ठीक से खाया न? मैं बहादुर को सब समझा कर गई थी।"

मैं सोच रही थी, उनके यह मित्र चार साल बाद आये हैं तो मैं भी तो कोई रोज़ आकर नहीं बैठी रहती, मैं भी छह वर्ष बाद यहाँ आई हूँ, थोड़ा ख्याल तो मेरा भी करना चाहिए था। अभी उन्हें आये पंद्रह-बीस मिनट ही हुए होंगे कि भाभी भाई से बोलीं – ‘सुनो, तुम थक गए होगे... जा कर थोड़ी देर सो लो, फिर शाम को तुम्हें क्लब भी जाना होगा।’

फिर भाई ने दो-चार वाक्यों में पति व बच्चों की खैरियत पूछने की औपचारिकता निभाई और जम्हाई लेते हुए अपने कमरे में चले गए। तभी भाभी ने सूचना दी – "मीता, तीन घंटे बाद मुझे कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ एक स्लम एरिया में जाना है, वहां निरीक्षण के लिए मंत्री महोदय आ रहे हैं। घर में बोर होगी, तुम भी चलो न। सफर में थक गई होगी, थोड़ा आराम भी कर लो... मैं भी थोड़ी देर आराम कर के आती हूँ।"

मुझे ड्राइंग रूम में ही बैठा छोड़ कर उन्होंने अपना बेडरूम बंद कर लिया था। मैं रुआंसी हो गई थी, सच इन्हें तो जरा भी अहसास नहीं है, मैं पति व बच्चों को अकेला छोड़ कर पीहर के प्रति अपने इस एकतरफा मोह पर पछताई थी। भाभी के उठने तक मैंने स्वयं को संयत कर लिया था।

रास्ते भर भाभी बताती रहीं कि कहाँ-कहाँ उनके इंटरव्यू छपे, कौन-कौन से सम्मान और अवार्ड उन्हें दिए गए, समाज में कितना सम्मान उन्हें मिला है।

"सच, सोशल वर्क की लाइन बहुत अच्छी है। बड़े-बड़े लोगों से परिचय बढ़ता है और जरूरतमंदों, गरीबों के लिए कुछ कर पाने से आत्म-संतोष भी मिलता है।" एक सोशल वर्कर ने सूचना दी थी कि टीवी वालों को, कैमरा वालों, प्रेस फोटोग्राफरों, संवाददाताओं को भी सूचित कर दिया गया है। ये लोग वैसे चाहे न भी आयें, किन्तु मंत्री के नाम पर आ जाते हैं।

उस बस्ती में जाकर मुझे लगा कि भाभी के साथ मैं पहले भी यहाँ आ चुकी हूँ, पहले की अपेक्षा इस बस्ती में काफी सुधार नजर आ रहा है। पक्की गलियां, पक्के शौचालय बन गए हैं, जगह-जगह कई हैंड पाइप लगे हुए थे। भाभी ने बताया, "सात-आठ वर्षों से हमारी संस्था इस बस्ती में काम कर रही है। पिछले वर्ष इस बस्ती में पांच कमरों की एक इमारत भी बनवाई थी। उसमें एक डिस्पेंसरी चलती है। एक हॉल में सिलाई-कढ़ाई सेंटर चलता है। बच्चों के पढ़ने के लिए बाल-वाड़ी की भी व्यवस्था की है। बुजुर्गों

के मनोरंजन के लिए एक कमरा अलग है, जहाँ वे टेप रिकार्डर पर भजन सुन सकते हैं, टीवी देख सकते हैं।"

"ये काम आपकी संस्था ने अच्छे किए हैं भाभी।" तभी एक औरत ने आकर भाभी को सलाम किया और मुझे देखकर मुस्कराई। भाभी तो आगे बढ़ गई, पर वह महिला मेरे साथ चलने लगी – "अम्मा, आप बहुत दिनों बाद आये हैं यहाँ... हम तो आपको बहुत याद करते हैं, लगता है आप हमें पहचानें नहीं?
... हम हैं जरीना बी।"
"हाँ जरीना बी, हमने आपको सचमुच नहीं पहचाना।"
"आप सात-आठ बरस पहले यहाँ आये थे, हमारा मरद शराब पी कर हमें बहुत मारता था... सब पैसे छीन कर ले जाता था।"

मुझे बहुत वर्ष पहले की वह घटना याद आ गई। भाभी के साथ उस वर्ष भी मैं यहाँ आई थी। एक औरत ने रो-रो कर अपनी कथा भाभी को सुनाते हुए अपनी पीठ पर पड़े मार के नीले निशान दिखाए थे। भाभी के लिए इस तरह की घटनाएँ आम बात थीं, किन्तु मैं सकते में आ गई थी। यह वही जरीना बी थी।

बहुत देर तक वह मुझसे बात करती रही। तभी उसने बताया कि उसका मर्द रिक्शा चलाता है और सारे पैसे दारू में उड़ा देता है, कम पड़ने पर मारपीट कर उनसे छीन लेता है। बातों के बीच ही उसने बताया कि उसकी दो बेटियां हैं। तब मैंने उसे सलाह दी थी कि यदि अपने दुखों को और नहीं बढ़ाना चाहती तो इन्हीं बच्चों में संतोष कर, इन्हें पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाओ और तीसरे बच्चे का ख्याल दिल से निकाल दो।

उसने कहा था, "अम्मा, हम भी यही चाहते हैं पर हमारा मरद नहीं मानता। न वह खुद ऑपरेशन कराता है, न हमें कराने देता। कहता है 'औलाद तो अल्लाह की नियामत है, उसके काम में दखल मत दो'। पढ़ा-लिखा नहीं है, उसके संगी साथी भी वैसे ही हैं। नए ज़माने की बात वह नहीं समझता। जब से यह पढ़ी-लिखी बहनें हमारी बस्ती में आने लगी हैं, तब से हमारे सोचने-समझने के तरीके में बहुत बदलाव आया है। हम समझ गए हैं कि हमारी गरीबी का कारण ये ढेर सारे बच्चे ही हैं। आप को नहीं मालूम, अम्मा, हम बचपन में बहुत तकलीफ पाए हैं। हमारी अम्मी पंद्रहवां बच्चा पैदा करने में मर गई। अब्बा इतने सारे बच्चों को रोटी नहीं खिला पाते थे, तालीम कहाँ से दिलाते? भाई लोग बचपन से ही चाय-पान की दुकान, पेट्रोल पम्प आदि पर नौकरी करने लगे। चार भाई-बहन भूख और बीमारी से मर गए। बाप निकाह कर के दूसरी औरत को ले आया। अब्बा ने रुपयों की खातिर दो बहनों की शादी अरब से आए बूढ़ों से कर दी, उनमें से एक तो अरब चली गई, पता नहीं वहां वह कैसी है। दूसरी को उसका शौहर मौज-मस्ती कर के बंबई के एक होटल में छोड़ कर चला गया था, बाद में उसने खुदकुशी कर ली। एक बहन को पास के गाँव में दस बच्चों के बाप से ब्याह दिया जिसकी पहले से ही दो बीबी जिन्दा थीं... हमारा हाल तो आप देख ही लिए हैं।"

मैं अपने ही विचारों में खोई थी कि उसकी आवाज़ से मेरा ध्यान भंग हुआ – "अरे अम्मा, इतनी देर से आप किस सोच में डूबे हैं?"
"कुछ नहीं, जरीना बी... मुझे सब याद आ गया। अब आपको कितने बच्चे हैं? आपका पति वैसा ही है या कुछ सुधर गया है?"

"बच्चे तो अब भी हमारे दो ही हैं। आप के मशवरे पर हम डाक्टर अम्मा के पास गए थे, उन्होंने कापर टी लगा दी थीं। मरद को पता ही नहीं चला। एक बार वह डाक्टर अम्मा के पास ले गया कि इसको बच्चा क्यों नहीं हो रहा? डाक्टर अम्मा को हम पहले ही सब बता दिए थे... जाँच करके वो बोली यह तो ठीक है, एक बार तू भी जाँच करा ले, उसके बाद वह डॉक्टर के पास नहीं गया।

आपकी सलाह से हमारी और हमारी बच्चियों की जिंदगी बन गई अम्मा, वरना अब तक तो यहाँ भी बच्चों की कतार लगी होती, हम उन्हें संभालते या कमा कर लाते?... हमारा मरद तो नहीं सुधरा, पहले वह दारू पीता था, बाद में उसको दारू पी गई। जहरीली शराब पीने से पिछले बरस उसकी मौत हो गई थी... मरते दम तक सताता ही रहा। वो हमारी चौदह बरस की बच्ची का निकाह हमारे अब्बा की उम्र के बूढ़े अरब से करना चाह रहा था, बदले में रूपया भी मिल रहा था। उस दिन हमें भी गुस्सा आ गया था, धक्का देकर उसे घर से बाहर निकाल आई थी। उसने मारने को हाथ उठाया तो हम भी डंडा ले कर खड़े हो गए... पुलिस बुलाने की धमकी दी, तब बड़ी मुश्किल से अपनी बच्ची को उस सौदे से बचा पाए।"

"अब तुम्हारी बच्चियां क्या कर रही हैं?"
"अम्मा, हम उन्हें अच्छी तालीम तो नहीं दिला पाए, सात-आठ क्लास पढ़ी हैं लेकिन दोनों सिलाई-कढ़ाई के हुनर में माहिर हो गई हैं। एक सिलाई मशीन तो अम्मा दिला दी थीं, एक हमने खरीद ली। हम दुकानों से स्कूल ड्रेस, थैले, लहंगे, शमीज आदि थोक के भाव सिलने को ले आते हैं... काम अच्छा चल रहा है। बैंक में दोनों के खाते भी खुलवा दिए हैं... अब बस एक ही तमन्ना है कि बच्चियों को अच्छा शौहर मिल जाए। अरब शेखों के दलाल तो बस्ती में चक्कर लगाते ही रहते हैं... पर हमें बच्चियों का सौदा नहीं करना है। अरे अम्मा, क्या टाइम हुआ है? हमें अपनी सास और ननद को लेने स्टेशन जाना है, मरद तो है नहीं, अब यह काम हमें ही करना होगा।"

उसे समय बता कर मैं सोच रही थी कि आत्म-निर्भरता ने इस अनपढ़ गरीब महिला में कितना आत्मविश्वास भर दिया है। अपने प्रयासों से गरीबी की एक रेखा तो इसने पार कर ही ली है। गरीबी से लड़ते हुए, अपनी समस्याओं में उलझे होने के बाद भी अपने दिवंगत पति की बूढ़ी माँ व बहन के आगमन के प्रति उत्साहित है। बसों में भीड़ के धक्के-मुक्कों के बीच भी सफर कर उन्हें स्टेशन लेने जाने की इच्छा रखती है।

इधर एक तरफ मेरे भाई-भाभी हैं, जो पढ़े-लिखे हैं, जिन्होंने समृद्धि और ख्याति द्वारा सफलता की कई रेखाओं को पार किया है, किन्तु अपनों के प्रति, निकटतम रिश्तों के निर्वाह के प्रति उदासीनता, उत्साहहीनता, सामान्य शिष्टाचारों की भी उपेक्षा उन्हें कहीं-किन्ही रेखाओं से नीचे भी ले आई हैं।

•••

घर ना तोड़ो

लघुकथा:- पवित्रा अग्रवाल

मैंने माली से कहा—
"बालय्या, देखो गार्डन में कुछ पेड़ बड़े होकर बहुत फैल गए हैं। जब भी तेज़ हवा चलती है, उनसे उलझ कर टेलीफोन के वायर टूट जाते हैं। फिर फोन ठीक होने में पाँच–सात दिन लग जाते हैं। इस बीच बहुत परेशानी होती है। ऊपर बैठ कर कबूतर भी बहुत गंदगी फैला रहे हैं। तुम देखो लॉन की घास को कितना गंदा कर दिया है। तुम आज सबसे पहले टेलीफोन वायर के आसपास की और लॉन के ऊपर की कुछ शाखाएं काट दो।"

माली ने पेड़ पर एक नजर डाली और बोला—
"अम्मा, झाड़ी पर बहुत सी चिड़ियों के घर हैं। उनमें उनके अंडे और बच्चे भी होंगे। कटिंग किए तो उनके घर टूट कर गिर जाएंगे। अम्मा, रहने दो न, उन्हें बेघर किया तो पाप लगता है।"

माली की बात सुनकर मुझे एक झटका सा लगा। चिड़ियों के घर टूटने और उनके बेघर होने की उसे इतनी चिंता है। अभी कुछ दिन पहले ही जब उसने अपने बीबी–बच्चों को बेघर कर दूसरी औरत को घर में बैठाया था, तब उसे अपने घर के टूटने का ख्याल एक बार भी नहीं आया।

•••

उस रात का डर

संस्मरण:- कविता नन्दिनी

आज से लगभग 42 वर्ष पहले की बात है। हमारे घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं हुआ करती थी। पिता जी पेशे से एडवोकेट थे। गरीब मजदूरों, किसानों और उत्पीड़न के शिकार असहाय लोगों की वकालत करते थे। उनके ज्यादातर मुवक्किल आर्थिक रूप से बहुत मजबूर हुआ करते थे, इसलिए वह फीस नहीं दे सकते थे। कभी-कभी तो वह घर जाने के लिए भी पिता जी से ही गाड़ी का किराया तक माँग कर वापस जाते। बड़ी मुश्किल से घर का गुज़ारा होता था।

इसका नतीजा यह रहा कि माता-पिता के बीच कहासुनी हो जाया करती थी। वकालत के सिवाय पिता जी की एक पहचान उनका लेखक होना भी था। इसलिए बहुत सारे प्रोफेसर अपने शोध कर रहे विद्यार्थियों को उनके पास भेज दिया करते थे। इसलिए अपना वक्त ज्यादातर बाहर के लोगों को दिया करते थे। सामाजिक

दायित्व पूरा करने की कोशिश में परिवार के लिए उनके पास हमेशा समयाभाव बना रहता। उनका कहना था कि, "मैं दूसरों के लिए बना था, बना हूँ और बना रहूँगा।" जिससे माँ झुंझला जाया करती थीं कि दूसरों के लिए बने थे तो क्या जरूरत थी परिवार पालने की।

इसके पीछे भी वजह थी कि हमारे दादा जी बुजुर्ग हो चुके थे और चाहते थे कि उनके जीते जी पिता का विवाह हो जाए ताकि उनके बेटे को अपनी भाभियों से कोई ताना न सुनना पड़े। उनका घर बस जाए ताकि समय से भोजन-पानी मिल सके। विवाह तो हो गया पर उनको परिवार के लिए वक्त ही नहीं मिल पाता था।
माँ बहुत शांत प्रवृत्ति की महिला थीं, लेकिन हम बच्चों के जन्म के बाद की आर्थिक स्थितियों का बिगड़ते जाना उनके लिए तनाव का कारण था। अजीब बात यह रही कि माँ-पिता के बीच की यह टकराहट इतनी साइलेंट होती थी कि हम सभी को इसका पता ही नहीं चलता था।

यादों की इसी कड़ी में एक और याद ताजा हो आई। जब मैं करीब आठ-नौ साल की रही होऊँगी। मेरी तबियत खराब थी और पापा हमें डाक्टर के पास दिखाने ले गए थे। जब हम डिस्पेंसरी से बाहर निकले तो देखा मम्मी दोनों भाइयों के साथ रिक्शे पर बैठकर जा रही हैं। पापा ने वह रिक्शा रुकवाकर मुझे भी बैठा कर विदा कर दिया। पिता के साथ बड़ा भइया यहीं शहर में रह गया। माँ के साथ हम तीनों अपने गाँव वाले घर की ओर चल पड़े।

मुझे समझ नहीं आया कि यह क्या हुआ? हमेशा तो सभी साथ रहते हैं। मम्मी तो पापा के बिना कभी अकेले कहीं नहीं जाती। मम्मी-पापा के बीच ऐसा क्या हुआ? पता नहीं चला। पापा ईमानदार व्यक्ति थे। वकालत के पेशे में रहते हुए कभी बेईमानी से नहीं कमाया। ऐसे में चार बच्चों को पालना, स्कूल की फीस, घर का किराया देना मुश्किल हो जाता था। माँ-पिता के बीच तनाव की यह एक बड़ी वजह थी। ये बात आज तो समझ सकती हूँ, पर बचपन में समझना आसान नहीं था।

खैर, माँ हम तीनों को लेकर गाँव वाले घर गईं। शाम के चार बज गए थे। घर का ताला खोला, घर की साफ-सफ़ाई की। बंद पड़े हैंडपम्प में पानी डालकर कुछ देर की मेहनत के बाद उसे चलाया और पानी भरा। हम सभी को पिलाया। घर के कुंडे में धान भरा था, उसको खोल कर धान निकाला। ओखल में डालकर दो-तीन किलो के करीब कूटा। घर के आँगन में अंगूर का बड़ा पेड़ था, जिस पर ढेर सारी सेम की लता फैली हुई थी, सेम की फलियाँ लगी हुई थीं। सेम की फलियों को तोड़ा और उन्हें उबाला। उसमें लहसुन, मिर्चा, नमक, तेल डालकर उसका चोखा बनाया। हम तीनों को कूटे हुए चावल से बना भात और चोखा खिलाया। मुझे याद नहीं कि माँ ने खाया था या नहीं।

उस दिन गाँव जाने का कोई सुख नहीं था। मैं पूरे वक्त माँ के चेहरे के भावों को पढ़ती रही। उसमें कोई क्रोध, कोई गुस्सा, कोई नाराजगी, कोई खुशी कुछ भी नहीं था। आज महसूस करती हूँ शायद घर से बाहर जाने का निर्णय लेकर माँ मन-ही-मन अफसोस करती रही होंगी। हम सभी छोटे थे, कभी माँ-पिता जी से अलग नहीं हुई थीं। कई बार गुस्से में इंसान गलत कदम उठा लेता है और जब मन शांत होता है तो गुस्सा उतर जाता।

खैर, माँ ने हम सबको खिला कर बिस्तर लगाया और सुला दिया। पर सच कहूँ तो उस रात आँखों में पल भर के लिए भी नींद नहीं आई। छत में टाँगने के लिए लगे हुए उस चुड़िले को, जिसमें रजाई बाँधकर लटकाई जाती थी, मेरी निगाह रात भर उस पर ही टिकी थी कि कहीं हमारे सोने के बाद माँ अपने को फाँसी न लगा दें। मन में तरह-तरह के भाव आते रहे और मन को आतंकित करते रहे। इस तरह हमारी सुबह हो गई थी।

माँ ने सुबह घर में ताला लगाईं और वापस हम शहर आ गए थे। मेरी और मुझसे छोटे भाई की तबियत भी अचानक खराब हो गई थी। पिता जी घर पर नहीं थे। मकान मालकिन से पता चला कि वह लखनऊ गए हुए हैं। तीन-चार दिनों के बाद पिता जी घर आए। उसके बाद हम सभी माता-पिता के साथ ही रहे और दोबारा कभी अलग नहीं हुए।

हमारी माँ हमें पालते हुए जीवन का सुख-दुःख देखते-देखते 2020 में ही पिता जी के साथ छोड़कर चली गई। पिता जी माँ के हिस्से का प्यार देने की भरपूर कोशिश करते रहे। जीवन भर उन्होंने अपने बच्चों को मुफलिसी में भी ईमानदारी से जीना सिखाया। दुश्मन के साथ भी अच्छा व्यवहार करने की नसीहत देते रहे। हम सभी को अपनी कम आमदनी के बावजूद उच्च शिक्षा के लिए यूनिवर्सिटी भेजा।

माँ के जाने के बाद उन्होंने परिवार को जितना समय दिया, सोचती हूँ कि माँ के रहते ऐसा होता तो शायद उन्हें भी पिता जी में आए इस बदलाव को देखकर सुकून मिलता। इसी वर्ष, करीब छह महीने पहले हमें एक-दूसरे के साथ छोड़कर वह भी चले गए।

•••

यह कैसा श्राद्ध!

लघु कथा :- मंजुला भूतड़ा

छोटा-सा बबलू सुन-सुन कर परेशान था। रोज-रोज श्राद्ध, कभी घर में तो कभी कहीं और। दादा-दादी, नाना-नानी और न जाने किस-किस का श्राद्ध। कभी दादाजी की पसंद का मूंग दाल का हलवा बनता, तो कभी दादी के लिए कचौड़ियां। बहुत से प्रश्न खड़े हो गए थे भोले से मन में।

आज स्कूल में उसके सहपाठी छात्र ने बताया,
"कल तो मेरी माँ का पहला श्राद्ध है, तो मैं स्कूल नहीं आऊंगा। मेरे घर में पूरी खीर-जलेबी बनेगी।"

यह सब बबलू की समझ से परे था। हां, बस यही समझ सका कि श्राद्ध में खूब पसंद की चीजें बनती हैं, खाते हैं और खूब मज़ा आता है।

शाम को जब घर आया तो बबलू मम्मी के पर्स से पचास रुपए निकाल कर ले गया और हलवाई की दुकान पर जाकर बोला,
"भैया, मुझे गुलाब जामुन दे दो, मेरी माँ को बहुत पसंद है।"
घर में खुशी से उछलते-कूदते आया और माँ से बोला,
"अरे माँ, आज आपका श्राद्ध है। देखो, मैं आपकी पसंद के गुलाब जामुन लाया हूं। आप तो अपनी पसंद का कभी कुछ बनाती ही नहीं।"

घर में सब हैरान और भौंचक्के से थे। पापा ने गुस्से से कहा,
"अरे बेवकूफ, यह क्या बकता है। श्राद्ध तो जो मर जाता है, उनका किया जाता है।"

बबलू ने बड़ी संजीदगी से जिज्ञासा व्यक्त की,
"तो वे लोग कहां गए?"
"अरे, वे भगवान के पास चले गए, अब कभी नहीं आएंगे।"
"तो पापा, जब वह चले गए तो उनकी यह पसंद की ये चीजें?"
"यह तो आप ही खा रहे हैं न!"

"तो पापा, जब मेरी माँ है, तभी उनका श्राद्ध कर लेते हैं न। ताकि अपनी पसंद के गुलाब जामुन माँ खुद खा सके। ठीक है न पापा।" और उसने माँ के मुंह में आखिर गुलाब जामुन खिला ही दिया। पापा के पास अब कोई जवाब नहीं था।

•••

याद एक दुर्घटना (1997-98) की

संस्मरण:- रविशंकर शुक्ल

दिवाली के पूर्ववर्ती सप्ताहों वाले दिन थे। मैं उन दिनों लगातार फैक्ट्री कार्य से बाहर जाता रहता था एवं कई दिनों तक बाहर ही रहना पड़ता था। अंशू का अध्ययन उत्तरोत्तर सुधार पर था एवं वह रातों को पूर्णतया मन लगाकर पढ़ रहे थे। अंशू के व्यक्तित्व में रुझान की उत्पत्ति हो चुकी थी। निधि की कोचिंग का आरंभ हो चुका था, साइकिल इत्यादि की कुछ समस्याएं थीं, पर इन सभी कारकों के बावजूद अपनी माँ सी जीवट वाली इस लड़की से मुझे शुरू से ही कुछ कर दिखाने की उम्मीद रही है और रहेगी। माँ का स्वास्थ्य पिछले वर्ष के सापेक्ष निरंतर सुधार पर था, और इसका श्रेय उस कर्म की देवी को जाता था, जिन्हें मैं गीतू बोलता हूँ और जो मेरी धर्मपत्नी हैं।

घर में अर्थाभाव की पूर्ति नहीं हो पा रही थी और मुझे आशा थी कि आने वाले दिनों में यह समस्या भी दूर हो जायेगी। इस मुद्दे पर हमारी एक लम्बी वार्ता हो चुकी थी। कुल मिलाकर सुकून वाले दिन थे। जीवन के समस्याओं की गाड़ियां अपने निदान रूपी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सही पटरियां तलाश कर चुकी थीं। उन दिनों मुझे अकूत भौतिक सुख प्राप्ति हुई।

हमेशा से जीवन के तनाव-मुक्त क्षण ही मेरे लिए बहुमूल्य रहे हैं, और शायद कभी-कभी ही उपलब्ध हुए हैं। फिर एक अंतराल के पश्चात मुझे भोपाल-इंदौर यात्रा करनी पड़ी, जो मेरे लिए फैक्ट्री कार्य वश भी थी और निजी भी।

मध्य प्रदेश (मध्य भारत) मेरे लिए शुरू से ही जिज्ञासा एवं कौतूहल का विषय रहा है। पुराना वास्तु शिल्प हमेशा मन को अतीत की ओर सोचने पर विवश करता है। इन्हीं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को टटोलते हुए एवं अपनी पत्नी से दूर-भाष का लाभ उठाते हुए रात्रि के करीब दस बजे मैं भोपाल नगरी पहुँचा था। विद्युत प्रकाश की दीपावली जैसी चमक, कहीं चढ़ाई, तो कहीं लगातार ढलान — पूरा शहर ही उतार-चढ़ाव का संगम था।

रात्रि में ही साली साहिबा और साढ़ू डॉ. साहब से मिलकर पुनः इंदौर के लिए प्रस्थान किया और देवास होते हुए करीब साढ़े आठ बजे सुबह इंदौर पहुँच गया। इंदौर से करीब चालीस किलोमीटर दूर मुझे पीतमपुरा (Industrial Estate) जाना था, अतः पुनः मिनी बस से पीतमपुरा के लिए प्रस्थान कर गया। वहां एक फैक्ट्री में कुछ आवश्यक निरीक्षण का कार्य निपटाकर मैं पुनः सायंकाल तक इंदौर पहुँच गया।

मेरे साढ़ू डॉ. ओमप्रकाश त्रिपाठी एक अत्यंत मिलनसार व्यक्तित्व के मालिक हैं। उनका आग्रह था कि मैं भोपाल होकर ही फिर वापस भिवाड़ी (राज.) जाऊं। अतएव मैं सुबह के साढ़े तीन-चार बजे के करीब भोपाल पहुँचा। भोपाल में कुछ संयोग वश सप्ताह भर का समय लग गया।

डॉक्टर साहब के सौजन्य से दो बार मंडी द्वीप जाना हुआ। वहां पर आप्टेल के जनरल मैनेजर वी. डी. शुक्ल जी से मुलाकात हुई। डॉ. साहब के घनिष्ठ मित्र पाण्डेय जी की रैक्सीन वैग बनाने वाली फैक्ट्री भी हमने देखी। मंडी द्वीप में ही गाँव के लड़के ध्रुव यादव से मुलाकात हुई और उसके करीब घंटे भर बाद विनायक त्रिपाठी से भेंट हुई, जो टमस (रींवा) के दिनों से ही साथ में रहा है।

उस भोपाल प्रवास में विनायक रचना नगर आकर दो बार मिले। एक दिन हम लोग एस. एन. पाण्डेय (वैग फैक्ट्री वाले) के घर भी मिलने गए। भोपाल में एक दिन वी. डी. शुक्ल जी के घर पर मुलाकात हुई। भोपाल में आप्टेल का हेड ऑफिस देखा। डॉ. साहब एक दिन उदयन वाजपेयी जी से मिलवाने ले जा रहे थे, पर संयोग वश वह भोपाल से बाहर थे।

कुछ अस्वस्थता वश और स्वजनों की आत्मीयता वश भोपाल से सप्ताह भर बाद ट्रेन द्वारा चला तो निजामुद्दीन उतर कर धारूहेड़ा पहुँच गया। अगले दिन फैक्ट्री गया। भिवाड़ी फैक्ट्री (सी. एम. आई. लिमिटेड) में ए. वी. पी. मुकेश अग्रवाल से विलम्ब हेतु वार्ता हुई। तत्पश्चात उन्होंने कहा कि आपको कल जयपुर जाना है। चार-पाँच दिन के लिए आवश्यक कागजात अभी अक्ष इंडिया लिमिटेड जाकर ले लीजिये, फैक्ट्री की गाड़ी अभी आती ही होगी।

मैंने सोचा, गाड़ी जब तक आएगी, तब तक क्यों नहीं ढाबा काम्प्लेक्स तक पैदल ही निकल चलते हैं। सी. एम. आई. लिमिटेड के फैक्ट्री गेट से पचास कदम अपनी साइट से चलते हुए ढाबा काम्प्लेक्स की तरफ बढ़ा था कि पीछे से आते हुए ट्रक ने दाहिने पंखे पर टक्कर मार दी। मैं नाच कर गिर पड़ा। पंखे का दर्द भयंकर था। बायां पैर भी दर्द कर रहा था। गिरे हुए मैं सामने ट्रक को जाता

हुआ देख रहा था, जिसमें से एक बार खलासी और एक बार ड्राइवर ने झांका। मैंने उस भयंकर दर्द में उठने की कोशिश की। पर मेरा बायां पैर खिसक रहा था और जूते वाला हिस्सा कहीं और जा रहा था।

खैर, उस भीषण दुर्घटना में गुड़गांव पुष्पांजलि पालीक्लीनिक में महीने भर के उपचार के बाद मैं सकुशल बच गया।

•••

बोध कथायें: परंपरा एवं महत्व

आलेख:- गोपाल शरण शर्मा

बोध शब्द से तात्पर्य है जानना। बोधक, बोधगम्य आदि इसी बोध शब्द के व्युत्पन्न हैं। हमारी भारतीय साहित्यिक परंपरा अनेक विद्वानों एवं मनीषियों के बौद्धिक ज्ञान एवं अनुभव से पुष्पित एवं पल्लवित रही है। भारतीय ऋषि-मुनियों के चिन्तन में लोक कल्याण की भावना सदैव व्याप्त रहती थी। इनका चिन्तन सदैव इस दिशा में होता था कि जन-कल्याण कैसे हो? हमारे प्राचीन मनीषियों द्वारा दिया गया "वसुधैव कुटुम्बकम" का उपदेश आज भी विश्व शांति और सामाजिक सौहार्द का आधारभूत सिद्धांत है। विभिन्न कालखंडों में संस्कृत जैसी शास्त्रीय भाषा एवं पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर वर्तमान में प्रचलित लोक भाषाओं तक बोध कथाओं की अविच्छिन्न परंपरा प्राप्त होती है। साहित्य की लिखित एवं वाचिक परंपरा में बोध कथाएँ, नीति वाक्य, सुभाषित, सूक्ति एवं लौकिक न्याय वाक्य विद्वानों एवं जनसामान्य में समान रूप से समादृत रहे हैं। यह बोध कथाएँ शिक्षाप्रद, प्रेरणादायक लघु कथाओं के रूप में प्रचलित होती हैं, जो महापुरुषों के अनुकरणीय कार्यों, पूर्वजों के लोक जीवन के अनुभवों पर आधारित होती हैं। ये मनोरंजक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी होती हैं। ये कथाएँ सभी के लिए प्रेरणा का कार्य करती हैं।

कभी-कभी मानव अनुचित कार्य करने के उपरांत उसका बोध होने पर किए गए अनुचित कार्य पर पश्चाताप करता है और कभी जब कोई अनुचित कार्य करने के लिए प्रेरित होता है, तब ज्ञानीजन अनेकों उदाहरणों के माध्यम से उसको सही-गलत का बोध कराते हैं। महाभारत, वाल्मीकीय रामायण, पुराण ग्रंथ, उपनिषद्, आरण्यक आदि ऐसी अनेक बोध कथाओं से भरे पड़े हैं। इन धर्मग्रंथों का अध्ययन करने वाला "सार सार को गह रहे, थोथा देय उड़ाय" की उक्ति के अनुसार अपने ग्रहण करने योग्य बातों में से उसे निकाल लेता है।

सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग — इन सभी युगों में बोध कथाओं का अपार संग्रह भरा पड़ा है। सतयुग के राजा सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कहानियाँ बोधि तत्व से निर्मित हैं। राजा हरिश्चन्द्र अपने सत्य बोलने के व्रत से कभी नहीं डिगे। उनका यह व्यवहार दूसरों के लिए प्रेरणा का कार्य करता है। महाभारत के अनुसार – "नास्ति सत्यात् परं दानं, नास्ति सत्यापरं तपः।" अर्थात सत्य से बढ़कर कोई दान नहीं और न ही सत्य से बढ़कर कोई तप होता है।

"सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।"
राजा हरिश्चन्द्र जीवन भर सत्य पर अडिग रहे। उन्होंने सत्य के लिए अपना राज्य, पत्नी, पुत्र — सभी का त्याग किया। विषम परिस्थितियों में भी सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र अपने सत्यव्रत परिपालन से नहीं हटे। उनके सत्यवादिता को लेकर लोक में भी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। उनके सत्य परिपालन को लेकर एक कहावत बेहद प्रसिद्ध है —
"चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यवहार। पे दृढ श्रीहरिश्चन्द्र कौ, टरे न सत्य विचार।"
भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण के चरित्र प्रेरणादायक हैं। उनके

द्वारा किए गए कार्य सदैव अनुकरणीय हैं। भगवान विष्णु के इन अवतारों द्वारा इस धरा-धाम पर की गई लीलाएँ बोध तत्व से परिपूर्ण हैं। मित्र का साथ, पिता का वचन परिपालन, सत्य की रक्षा, परोपकार की भावना — श्रीराम व श्रीकृष्ण के चरित्र की विशेषताएँ हैं।

हितोपदेश, पंचतंत्र एवं जातक कथाओं के माध्यम से लोगों के अन्तःकरण में छुपे बोध तत्व को जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है। प्रत्येक मानव के लिए बोध का होना अत्यंत आवश्यक है। यह बोध तत्व ग्रंथों के अध्ययन अथवा अनुभव के माध्यम से आता है।

भगवान बुद्ध ने अनुभव के माध्यम से संसार में व्याप्त दुःख एवं पीड़ा से ग्रसित मानवता को देखा। इस दुःख और संताप को देखकर भगवान बुद्ध ने संन्यास लेने का निर्णय लिया। अनेक वर्षों तक भ्रमण करने के उपरांत जब वह संसार के दुःख के कारणों के विषय में न जान पाए, तब उन्होंने एकाग्रचित्त होकर एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर आत्मचिंतन किया। लगातार ध्यान और मनन करने के उपरांत उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह ज्ञान ही बोध था। इसी बोध के जाग्रत होने पर भगवान बुद्ध बोधिसत्व कहलाए। बोध तत्व को प्राप्त करना "आत्म दीपो भवः" के समान है। बोध तत्व प्राप्त कर मानव सरलता को प्राप्त करता है। नाभादास जी द्वारा रचित भक्तमाल में अनेक भक्तों के जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है, जो प्राणी भक्ति का आश्रय चाहता है, उसके लिए भक्तमाल संजीवनी बूटी का कार्य करता है। संतों के जीवन चरित्र का अनुकरण कर भगवद कृपा प्राप्त की जा सकती है।

रामचरितमानस के रचयिता गो. तुलसीदास जी का अपनी पत्नी रत्नावली से प्रेम था। एक बार जब रत्नावली किसी कार्य हेतु अपने मायके गईं, तब पीछे से तुलसीदास जी उनके विरह में व्याकुल हो गए। आसक्तिवश तुलसीदास जी रत्नावली के घर तक जा पहुंचे। यह देख कर रत्नावली ने उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई। उन्होंने तुलसीदास को लताड़ते हुए कहा —
"अस्थि चर्म मम देह ये यामे ऐसी प्रीत, होती जो श्रीराम में तो काहे भव भीत।"

अपनी पत्नी के कठोर वाक्यों को सुनकर तुलसीदास जी को अपनी स्थिति का भान हुआ और वह उसी क्षण वहां से चले आए। इस घटना के बाद तुलसीदास जी की जो भावनाएँ अपने आराध्य श्रीराम के लिए प्रकट हुईं, वह रामचरितमानस के अद्वितीय महाकाव्य के रूप में जगत में विख्यात हुईं।

कथाएँ जीवन के अनुभव का निचोड़ होती हैं। जिन ज्ञानी लोगों को अपनी विद्या, बुद्धि, शक्ति, ऐश्वर्य आदि का गर्व होता है और जो जानना-समझना नहीं चाहते, ऐसे लोग भी कथा सुनने के बड़े प्रेमी होते हैं। बुद्धिमान लोग बोध तत्व से युक्त कहानियों के माध्यम से अभिमानी मानवों को कुमार्ग से सुमार्ग पर लाने का प्रयास करते हैं।

इन कथाओं में जो उपदेश निहित होता है, वह सुनने में मधुर और आचरण में सुगम जान पड़ता है। इसलिए इन कहानियों की ओर सबका आकर्षण होता है। बोधत्व से युक्त कथाओं की बात ही निराली होती है।

बोध कथाएँ मनुष्य का कल्याण करने में सहायक हैं। इन कथाओं ने विश्व का जितना उपकार किया है, उतना किसी ने नहीं किया। ये कथाएँ पुस्तकों, संतों, भक्तों अथवा घर के बड़े-बुज़ुर्गों से प्राप्त हो सकती हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके परिवार, गुरुजन, परिवेश के साथ-साथ उसके द्वारा पठित साहित्य की महती भूमिका होती है।

बोध कथाओं में जगत कल्याण की बातें शामिल होती हैं। मानव इन कथाओं की ओर उन्मुख होता है, जो उसके मन पर स्थायी प्रभाव डालकर व्यक्तित्व को तराशती हैं। बोध तत्व हमारे भीतर ही समाहित है; आवश्यकता है उसके जागरण की।

बुद्धत्व की एक ही पहचान हो सकती है और वह है स्वयं का जागरूक हो जाना। भीतर का अज्ञान समाप्त हो जाए और ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो, तब प्राप्ति होती है बोधत्व की। कबीरदास जी कहते हैं — "जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाही।
सब अँधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या माहि।"
हृदय के अहंकार को समाप्त किए बिना ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है। यह बोधत्व की पहचान है। बुद्ध शब्द का अर्थ है ज्ञानी; जो लोगों को सन्मार्ग दिखाने का कार्य करे, वही बुद्ध है।

बुद्धत्व प्रकट होने पर दृष्टि में समानता का भाव आता है। व्यक्ति के मन से अपने-पराये का भेद मिट जाता है। उसका प्रेम व्यक्तिगत न होकर संसार के समस्त प्राणियों के लिए हो जाता है। उसके लिए सारा संसार "वसुधैव कुटुम्बकम" की तरह हो जाता है। वह संसार में व्याप्त दुखों को समझने लगता है। उसका चिंतन केवल संसार के उत्थान के विषय में होता है। "सर्वे भवन्तु सुखिनः" ही उसका ध्येय वाक्य बन जाता है।

संसार में जितने भी महापुरुष हैं, उनका जीवन किसी न किसी से प्रभावित अवश्य रहा है। सत्यवादिता, सदाचार, राष्ट्रभक्ति एवं इष्ट-आराधना — ये सब बोध कथाओं के श्रवण से ही प्राप्त होता है। दुश्चरित्र व्यक्ति के मन पर भी ये कथाएँ असर डालती हैं। आपराधिक प्रवृत्ति वाले मनुष्य इन कथाओं और अनुभवों को सुनकर कुमार्ग छोड़कर सुमार्ग पर चलने का प्रण लेते हैं।

बोध तत्व मानव को ज्ञान की प्राप्ति कराता है और बिना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं है। गुण-धर्म से रहित व्यक्ति का जीवन निरर्थक है। चाणक्य नीति के अनुसार —
"गुणधर्म विहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम्।"
मानव का मन बड़ा चंचल स्वभाव वाला होता है। इसे स्थिर रखने का कार्य बोध कथाओं के माध्यम से किया जाता है। बोध कथाएँ मानव जाति के लिए सर्वोत्तम विद्यालय हैं। इस पाठशाला से प्राप्त सीख अन्यत्र दुर्लभ है।

•••

सच्चा बंधन

काव्य:- उर्मिला यादव 'उर्मि'

इस जहां में बन्धन है,
सच्चा बंधन प्रीत का।
बंधन यह बड़ा अनमोल,
दिल जीत ले मनमीत का।।
जब कभी दर्द ज़माना देता है,
शब्द शरों से आहत करता है।
तब पिछे से हौले-हौले आकर,
दिल जीत ले मनमीत का।।
दिल हो जब बेचैन और,
लगता नहीं कहीं और मन।
चोरी-चोरी ख्वाबों में आकर,
दिल जीत ले मनमीत का।।
मुसीबतों का जब पहाड़ टूट पड़े,
और साथ नहीं हो कोई खड़ा।
तब चुपके-चुपके से आकर,
दिल जीत ले मनमीत का।।
जग की मोह माया में फँसकर,
ग़र कभी राह से भटक जाएँ।
तब सत पर पर यह चलाकर,
दिल जीत ले मनमीत का।।
अकेलापन जब खाने को दौड़े,
और जीवन लगने लगे नीरस।
तब संग बैठ मिठ्ठी बातें बनाकर,
दिल जीत ले मनमीत का।।

•••

घर बैठे

लघु कथा:- डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी

मेरे फ़ोन की रिंग बजी। फ़ोन उठाकर हैलो कहा तो सामने से एक स्त्री स्वर आया,

"गुड मोर्निंग सर, हमारी संस्था बहुत सारे विषयों का सर्टिफिकेट दिलाती है, पूरा कोर्स और एग्जाम्स ऑनलाइन हैं।"
मैं — "ओके! तो एग्जाम सेंटर कहाँ पर आता है मैम?"
"आप समझे नहीं सर, ऑनलाइन है।"
"मतलब? ऑनलाइन है तो सेंटर तो आता होगा ना मैम या फिर घर बैठ कर ही..."
"जी..."
"फिर तो मैम, कोई भी चीटिंग कर सकता है?"
"अरे नहीं! हमारे इन्वीजिलेटर बैठते हैं।"
"कहाँ?"

"विडियो में।"
"लेकिन अगर मैं अपने कम्प्यूटर पर दो मॉनिटर लगा दूं तो दूसरा मोनिटर आप कैसे मॉनिटर करेंगे?"
"जी...?"
"और मैं दूसरी कोई विंडो या ब्राउज़र का टैब नहीं खोल पाऊं तो उसके लिए क्या प्रोक्टरिंग सिस्टम है आपका?"
"सर, आज शनिवार है, हमारा एग्जाम अभी शुरू होने वाला है। मैं आपसे उसके बाद बात करूंगी।"
कहते हुए उसने फोन कट कर दिया। फिर फोन कभी आया भी नहीं।

•••

मां की स्मृतियां

संस्मरण:- नूतन गर्ग

मां की याद आ रही थी। हालांकि आज सुबह ही उनसे काफी देर तक बातचीत हुई थी। मैंने उनसे कई बार पूछा था, "मां, तबीयत कैसी है?" हर बार उनका एक ही जवाब — "ठीक हूं बेटा।"
उनकी आवाज़ कई बार फंसी थी, बीमार व्यक्ति की तरह स्वर भी! खांसी का दौर, सांसें फूल रही थीं।
"मां, आप छुपा रही हैं। मुझे लगता है, आप अस्वस्थ हैं। मैं आऊं?"
"नहीं बेटा, तुम्हारा ट्यूशन छूट जाएगा। नाहक भाग-दौड़ करने की क्या ज़रूरत है? मैं बिल्कुल ठीक हूं।"
मैं कुछ देर तक सोचती रही थी। मेरा विवेक कह रहा था — "मां अस्वस्थ हैं।" मैंने निश्चय कर लिया — "आज ही जाऊंगी।" मेरे प्रोग्राम में मेरे पतिदेव जी सहर्ष शामिल हो गए। दिल्ली से रुड़की की दूरी 198 किलोमीटर है। कार से लगभग चार घंटे का समय लगता है। कार अपनी थी। हम दिल्ली से दो बजे निकले। पतिदेव ड्राइविंग कर रहे थे। पूरे रास्ते मैं मां के बारे में ही सोच रही थी।
कमरे में प्रवेश करते हुए —
"मम्मी, कैसी हो?"
"ऊंह... ठीक नहीं हूं... कैसे आई?"
"आपकी याद आ रही थी, मां।"

"मुझे भी तेरी बहुत याद आ रही थी, अच्छा किया जो आ गई।"
"चल, मेरी चोटी कर दे और अच्छे से तैयार भी कर दे। तू अच्छा तैयार करती है।"
आंखों में आंसू छिपाते हुए मैंने कहा — "लो मम्मी, आप तो रानी जैसी लग रही हो।"
"अच्छा! मुझे तुम्हारे पापा के पास जाना है, वे बुला रहे हैं।"
मसखरी करते हुए मैंने कहा — "पापा तो आपको देखकर कहेंगे... आज भी तुम वैसी ही लग रही हो जैसी पहले लगती थीं।"
"धत्त!" कहकर मां शर्मा गईं।
"आज तो खाना भी मैं तेरे हाथ से ही खाऊंगी।"
खाना खिलाने के बाद बोलीं — "मुझे चादर उढ़ा दे, बहुत दिनों बाद आज चैन से सोऊंगी।"
मैंने मम्मी को चादर उढ़ा दी और कहा — "मम्मी, अब मैं चलती हूं, अपना घर भी तो देखना है।"
मुड़कर मेरी तरफ देखते हुए, मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहती हैं —
"हां बेटा, जा। इसीलिए तो तुम्हारी शादी की थी हमने। पर एक बात ध्यान से सुन मेरी — दामाद जी से लड़ा मत करना, वे बहुत अच्छे हैं।"
फिर मम्मी सो गईं। शायद उन्हें पता था कि उनका वक्त पूरा हो गया है और आखिरी श्रृंगार बहुएं करती हैं, इसलिए उन्होंने अपनी बेटी को यह हक़ अंतिम सांस लेने से पहले दे दिया।
मेरे लिए उनका चेहरा भूलना और अपने हाथों से मां को तैयार करना अब नामुमकिन है...

•••

मील का पत्थर

कविता:- राजेश, पाटलिपुत्र

समय के बदलते रुख में
ठहर गया है दुख
मील के पत्थर की तरह
जिधर पत्थर गिर रहे हों बेतरह
कौन जाए उधर
चैन है इधर;
दुख अब सुख में है अपनी जगह
दुख भूल चुका है दर्द और आह,
जब स्थितियाँ नियंत्रण में ना हों
जब परिस्थितियाँ स्वरूप दावानल हों
मील का पत्थर होना ही बेहतर है
मील का पत्थर हर राही का सहचर है!!

•••

एक छोटी सी बड़ी शिक्षा

संस्मरण:- अनिल कुमार मिश्र

एक छोटी सी बड़ी घटना जिसने मुझे समयनिष्ठ बनाया, आपको रोचक लगेगी इसी प्रत्याशा में ;

बात 1988 की है। मैंने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी और ईश्वर नें पुरस्कार स्वरुप नयी-नयी मूंछें दी थीं। मूंछों को भी शुरू से अनुशासन में रखना मेरी जिम्मेदारी थी, हमेशा ध्यान रखता था कि कहीं रास्ता भटक कर अनुशासनहीन ना हो जाये।

हज़ारीबाग़ के संत कोलंबा महाविद्यालय में नामांकन हुआ जहाँ उस जमाने में नामांकन अत्यंत दुर्लभ था। फिर क्या था, धीरे-धीरे ही सही पर अहंकार सातवें आसमान पर—आखिर कॉलेज में दाखिल हुआ था, कोई छोटी बात थोड़े ही थी। कहाँ विद्यालय और कहाँ महाविद्यालय! खुद में एक अजीब सी अनुभूति स्वतंत्रता की, बड़े होने की।

पुरानी साइकिल पर कॉलेज जाने में जो आनंद आता था वो शायद आज के छात्रों को बाइक में भी नहीं आता होगा। खुली, विस्तृत सड़कें बाँह फैलाए स्वागत करती सी प्रतीत होती थीं और साइकिल पर मेरा तन और युवा मन दोनों हज़ारीबाग़ शहर की प्रकृति से, झूमती हवाओं से, नाचते पत्ते और फूलों से संवाद स्थापित करता रहता था।

मैं कला का छात्र था, मेरे पिताजी ने मुझसे बात करना बंद कर दिया था जब मैंने कला पढ़ने की इच्छा व्यक्त की थी। मेरे पिताजी चाहते थे मैं विज्ञान पढ़ूँ, उनके मित्रों के सभी सपूत विज्ञान पढ़ रहे थे, गुस्सा स्वाभाविक था। मेरी अभिरुचि विज्ञान में बिल्कुल नहीं थी और गणित से मैं थर-थर काँपता था।
उन दिनों हमारे आवास का निर्माण कार्य चल रहा था। मैं घर में बड़ा था तो जिम्मेदारी भी स्वाभाविक थी। आवश्यक दायित्त्वों के निर्वहन के उपरांत अपनी बूढ़ी साइकिल से बाज़ार जाकर सीमेंट, छड़, कांटी, हार्डवेयर आदि के आवश्यक सामग्रियों को लाया करता था। पिताजी तो महाविद्यालय में अध्यापन कार्य में प्रायः व्यस्त रहते थे। जब भी पिताजी घर पर होते तो सारे कार्य खुद ही किया करते थे, कभी भी हम पर कोई भी कार्य नहीं छोड़ते थे। इसी कारण से मौका मिलने पर मैं अवसर गँवाना नहीं चाहता था।

उस दिन मेरी कक्षा थी संत कोलंबा महाविद्यालय के कमरा संख्या 4 में। मेरे पिताजी ही शिक्षक थे। बाजार से छड़ बाँधने के लिए मैं तार लाने गया था, उम्मीद थी की समय पर घर होते हुए महाविद्यालय पहुँच जाऊँगा।

वह काली बूढी साइकिल, घंटी वाली, उसके पैडल पर मेरे पाँव तेज़ी से चल रहे थे, खुद पर और अपनी साइकिल पर पूरा भरोसा था। समय पर अपनी कक्षा में उपस्थित हो जाऊँगा, ऐसी उम्मीद थी। भय से पसीने छूट रहे थे कि कहीं देर ना हो जाये। दूसरे शिक्षकों से शायद मैं बच भी जाता पर पिताजी जो मेरे शिक्षक भी थे, उनकी नज़रों से बचना लगभग असंभव था।

महाविद्यालय के साइकिल स्टैंड में साइकिल लगाते, टोकन लेते ही घंटी लग गयी, बहुत अफ़सोस, क्या करूँ, नहीं करूँ? उस जमाने में महाविद्यालय का अनुशासन भी कम नहीं था। उस जमाने के शिक्षक की एक-एक बातें काफी गूढ़ होती थीं और जीवन के दिशा निर्धारण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

हिम्मत जुटाते हुए कक्षा की तरफ तेजी से भागा जा रहा था, शायद पिताजी से पहले कक्षा में पहुँच जाऊँ। पर जैसे ही कक्षा के पास पहुंचा तो दरवाज़ा सटा था—मतलब गुरुदेव/पिताश्री प्रविष्ट हो चुके थे। ऊपर वाले को याद किया, फिर सोचा—थोड़ा विलंब हुआ तो क्या पिताजी मना थोड़े ही करेंगे।

एकदम भारी मन से डरता हुआ, घबराता हुआ आवाज़ दिया—
"अंदर आ सकता हूँ?"
थोड़ी देर मुझे देखने के बाद आवाज़ आयी—"नहीं, विलम्ब से आनेवालों के लिए मेरी कक्षा में स्थान नहीं है।"
मैं अवाक रह गया, बिल्कुल मूर्त्तिवत—पिताजी ने मुझे मना कर दिया। इस बात की तो बिल्कुल भी उम्मीद ना थी। यदि कोई दूसरा छात्र होता तो शायद पिताजी उसे अनुमति दे देते, इसी कारण जवाब में विलम्ब हुआ।

मैं उतने छात्रों के सामने कैसे बताता कि तार, सीमेंट आदि लाने गया था। मैं बिलकुल मूक होकर, अपरिपक्व मन में बहुत सारी बातें सोचते हुए, समय के मूल्य को पहचानने का प्रयास करते हुए कक्षाओं के गलियारे से बाहर आकर महाविद्यालय के मैदान में हरी-हरी घासों पर बैठकर मन ही मन क्षमा करने का निवेदन किया। अगली कक्षा राजनीति विज्ञान की थी, कक्षा में ससमय प्रविष्ट हुआ। कक्षा के बाद जब मैं घर लौटा तो पिताजी की नजरें मुझसे मिलीं। आँखों ही आँखों में दोनों ओर से बहुत सारे प्रश्न स्वतः उत्तरित हो गये। प्रश्नों के उत्तर भी मिले, कुछ उत्तर भी प्रश्न बन गये।

पिताजी ने उसी संध्या समय पर एक लंबा व्याख्यान दिया और बड़े प्यार से समझाया—
"यदि हम समय को महत्त्व देते हैं तो समय भी हमें महत्त्व देता है, यह परस्पर है। अंग्रेज़ी का 'लेट' शब्द काल-कवलित लोगों के नाम के साथ लगता है। जीवन में हर समय 'समय' का सम्मान किया जाना चाहिए ताकि समय भी तुम्हें उसी अनुरूप सम्मान दे।"
फिर क्या था, पिताजी की शिक्षा ने सब कुछ बदल दिया और फिर मैं उनके आशीर्वाद से, ईश्वर की असीम कृपा से कभी भी, कहीं भी लेट/विलंबित नहीं हुआ।

देश के कई राज्यों में विद्यालय के शिक्षक एवं प्राचार्य के रूप में मैंने अपनी सेवा दी, परंतु समय का सही प्रबंधन कर पाना बस इसी छोटी सी बड़ी घटना का प्रतिफल है। अपने सभी विद्यार्थियों को मैंने हमेशा समय को महत्त्व देना सिखाया।
पिताजी आज मेरे साथ नहीं हैं, पर उनकी एक छोटी सी सजा ने मुझे लायक बना दिया।
पिताजी! शत-शत नमन!

•••

वटवृक्ष की छाँव

कविता:- शिखा खुराना 'कुमुदिनी'

सुरक्षित थे हम सधे हुए उन वटवृक्षों की छांव में।
काल कंटकों से बचे रहे, जब तक थे उनकी पनाह में।

ज़ख़्म टीसते हैं अब उनके चले जाने के बाद।
हर दर्द का मरहम थे वो, खुशियां उनसे थीं आबाद।

उनकी ही बदौलत पहलू में दुनिया की हर दौलत थी।
सर पर उनकी दुआ का साया और कदमों में जन्नत थी।

बुज़ुर्ग हमारे छोड़ गए हैं, संस्कारों की वो धाती।
वंशों को देकर जाने को संबंधों की प्रेम पाती।

उंगली पकड़कर चलते थे, कंधों पर सवार रहते थे।
गिरोगे तो संभलना सीखोगे, मेरे पापा कहते थे।

सच-झूठ की आज हो रही पहचान, जो अगर हमें।
अंधियारे राहों में उनकी नसीहतें हीं दीपक बनें।

त्याग, तपस्या, परिश्रम का जो अमूल्य पाठ पढ़ाया था।
सत्य की राह पर चलकर जीना उन्होंने सिखलाया था।

बंजर धरती पर सपनों के बीज बोए थे,
आशीषों के जल से सींचकर जीवन वृक्ष संजोए थे।

आज नहीं हैं साथ हमारे, फिर भी हरदम पास हैं वो।
धड़कनों की लय में बसते हैं, दृढ़ता सा विश्वास हैं वो।

दुनिया की हर ठोकर उनकी याद को संबल देती है,
पापा की दी हुई हर नसीहत मुश्किल को हल कर देती है।

•••

कबूलनामा

कहानी :- डॉ. रजनीकांत

मैं एक सेवा निवृत अध्यापक हूँ। सत्तर वर्ष को होने को आया हूँ। इस आयु में लोग प्राय: कहने लग जाते हैं कि यह प्राणी सत्तर बत्तरा हो गया है। वैसे आपको बता दूँ कि मैंने आयु को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया है। छ: कनाल का एक खेत है। हम मियां बीवी के लिए पूरे वर्ष के लिए पर्याप्त फसल हो जाती है। अब तो ट्रेक्टर से खेत में बुआई हो जाती है। वर्ष में गेहूं और मक्की की फसल हो जाती है। हम मियां बीवी खुद खेत में काम करके संतुष्ट रहते हैं। हाथ पैर चलते रहते हैं।

शौक के लिए कह लीजिये, हमने एक भैंस पाल रखी है। बहाने से कसरत हो जाती है। नियमित रूप से घास पानी के लिए हमे गोहरण की ओर दौड़ना पड़ता है।

सेवा निवृति के बाद मुझे किसी अपने आत्मीय ने कान में फूंक मार कर कहा था - मास्टर जी! रिटायरमेंट के बाद व्यस्त रहना और मस्त रहना। मेरी इस सूत्र को गांठ बांध कर रखना। हो सके तो आगे भी लोगों को बताना।

मैं उस दिन से खुद को व्यस्त रखने का प्रयत्न करने लगा। समाचार पत्र मेरी कमजोरी है। दो घंटे लगाकर दो तीन समाचार पत्रों को चाटना मेरा शुगल है। संसार का ज्ञान भी तो जरूरी है। कहाँ क्या हो रहा है? इस बात को लेकर कभी हमारी धर्म पत्नी से ऊंच - नीच हो जाती है।

सेवा निवृति के बाद मैंने व्यवहारिक जीवन में काफी परिवर्तन होते देखता रहा। वैसे तो हर प्राणी के जीवन में परिवर्तन आते हैं। मुझे स्मरण है कि हमारे पड़ौस में एक नर्स रहती थी। उसके पतिदेव फ़ौज में थे। साल एक दो बार फौजी भाई छुट्टी पर आयें। महाराज! गर्मियों में धर्मपत्नी हाथ पंखा लेकर झोले। खूब सेवा करे। हमारे देखते देखते फौजी भाई सेवा निवृत होकर घर आ गये। वही औरत उस गरीब को ना झेले। क्या मजाल वह बेचारा चारपाई पर खाली बैठा दिख जाये। उसकी खैर नहीं। एक दिन सुस्ताने के लिए चारपाई पर जाकर लेट गया। धर्मपत्नी ने आव न देखा न ताव झट एक बाल्टी पानी भरकर धर्मपति पर उड़ेल दिया। सारा मुहल्ला हतप्रभ। इस औरत को क्या हो गया? समाचार पत्र पढ़ता तो उसे चार आगे से सुना देती। हर बात में तकरार। आदमी जाये तो जाये कहाँ?

सत्य कहूँ, हमारा पहले का जीवन अच्छा कट गया। किन्तु सेवा निवृति के बाद धर्मपत्नी का स्वभाव काफी गर्म हो चला था। छोटी- छोटी बात को लेकर बरसने लग जाती। खाली बैठा तो उससे झेला न जाये। सुनने को मिलता - सारा दिन अख़बार चाटते रहते हो। क्या मिलता है इससे? यह अख़बार तो मेरी सौतन बनती जा रही है। यह नहीं कि कोई काम कर लो। मेरा हाथ ही बंटा दो। मगर नहीं।

सेवाकाल में हर महीने वेतन के पैसे धर्मपत्नी के हाथ में धर दिए जाते। तब तो सब ठीक लगता था। अब बूढा झेला नहीं जा रहा है। चपातियों तक की गिनती होने लगी थी।

पेट आपका ठीक नहीं रहता। बुढ़ापे में सेहत का तो ख्याल रख लो।

हर बात पर व्यंग्य, हर बात पर तंज़। करे तो कोई क्या करे? जवानी में तो आदमी उड़ता फिरता है लेकिन आयु के इस मोड़ पर आकर मियां बीवी को एक दूसरे का ध्यान रखना चाहिए। मैं कई बार धर्मपत्नी को समझाता। मगर मैडम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। जैसे वह मेरी कोई बात सुनने को तैयार नहीं थी। मेरी हर बात का उसके पास घड़ा घड़ाया उत्तर था। मैं अपनी किस्मत को कोसने लग गया था। हर बात में जब ताने सुनने को मिलते तो कलेजा रोने लग जाता। घर की हर बात किसी से की भी नही जाती।

हमारी बीवी की सखी मंडली घर में जमी रहती। वह अपनी सखी सहेलियों से हंस -हंस कर बोलती। उन्हें अपने हाथ से चाय पिलाती। मैं यदि टीवी पर कोई मूवी देखने लगूं तो मैडम हो जाती शुरू - अब तो बुड्ढे को जवानी चढ़ रही है। अपनी उम्र का तो ख्याल रख लो। पोते पोतियों वाले हो गये पर इन्हें तो बस नाच गाना चाहिए।

मैडम आयें और झट से टीवी० का कान मरोड़ जाएँ। आदमी की सहनशक्ति होती कितनी है? मैं अपने आप को कोसता घर से बाहर सड़क पर दूर तक जा आता। मैडम की कहीं बातें मेरे जेहन में गूंजने लगतीं। मुझे लगता कि मैं पागल हो जाऊंगा। एक दिन सोचते सोचते सड़क पर चलते जा रहा था। मैं ट्रक के नीचे आते आते बचा। चालक खिड़की से झांककर गालियां बरसा रहा था -

भाईया जी! नीचे आने को मेरी गाड़ी मिली थी आपको। बाईं ओर चला करो पिताजी।

बुदबुदाता ट्रक चालक अपनी राह हो लिया।
भैंस ने हमे बांध रखा था। उसकी देख भाल के लिए हममे से एक को घर में उपस्थित रहना पड़ता था। किसी रिश्तेदार की शादी ब्याह में एक प्राणी ही जा सकता था। हम तो भैंस के साथ साथ खूंटे से बंध गये थे। बच्चे अपने साथ चलने को कहते। हम उन्हें अपनी मजबूरी का वास्ता देते।

मैं कई बार देविका से कह चुका था कि भैंस को अलविदा कह देते हैं। पूरी उम्र तो घर से बाहर निकले नहीं। चलो बहाने से बाहर की दुनिया देख लेंगे।

न जी न। आपने ऐसा सोचा भी कैसे? बच्चों के लिए मैंने घी जोड़ना शुरू किया है।

देविका को समझाता देसी घी तो शहर में भी मिल जाता है। पर देविका कई प्रकार के तर्क देने लगती। उसके तर्कों कुतर्कों के समक्ष मैंने मैडम के आगे हथियार डाल दिए थे। मैंने मन को समझा लिया कि मुझे अब ज्यादा नहीं उलझना है। मगर घर में दो बर्तन हैं तो खड़केंगे तो जरुर।

मुझे आसपास निरर्थक लगने लगता। मैंने महसूस किया कि मुझ में घोर निराशा, एकाकीपन और अकेलापन घर करता जा रहा था। मैं खुद को बोझ समझने लग गया था। जैसे कि मैं अपने घर में कूड़ादान हूँ। न जाने कब यह कूड़ादान बाहर फैंक दिया जायेगा। मुझे टूटकर बागवानी का शौक था। कई प्रकार की सब्जियां मैंने क्यारियों में लगा रखी थीं। उन्हें गाहे बगाहे पानी देता रहता। कद्दू, तोरी, रामतोरी, लौकी के बेलों तन्न लगाकर उन्हें रसोई के ऊपर चढ़ा दिया था। पर यह चीजें मुझे कोई आत्मिक प्रसन्नता प्रदान न कर रही थीं। निराशा का एक घनघोर अँधेरा मेरे मन मस्तिष्क पर छाने लगा था।

मेरे परिवार में मेरा इकलौता बेटा है। जिसे मैं हद्द से ज्यादा प्यार करता हूँ। मेरा एक छोटा पोता है। वह मात्र दो साल का है। उसकी तुतली बातें याद आतीं। घर में हम दो प्राणी। एक छत के नीचे सोते हुए हम अकेले और तन्हा थे। मैंने महसूस किया कि मेरी नींद कम होने लग गई थी। करवटें बदलकर पूरी रात गुजार देता। देविका को उच्च रक्त चाप था। नियमित रूपसे उसे समय पर दवाई खाने को चेता देता। जो मेरे कर्तव्य हैं मैं उनसे पीछे नहीं हट रहा था।

पिछले महीने बेटा घर आया था। कह रहा था -
पापा! अब भैंस को बेच डालो। घर को ताला लगाकर मेरे साथ चलो। दो चपातिया खानी हैं आपने, वे हमारे साथ रहकर खाओ। बहुत काम कर लिया आपने। अब हम सब इकठे रहेंगे।
मैंने संकेत दे दिया था -
अपनी माँ को पूछ लो। अंतिम निर्णय तो उसी का होगा। हमे कौन पूछता है?
बेटे को सब पता है। माँ के गर्म स्वभाव को वह भली भांति जानता है। जब माँ शुरू हो जाती है तो उसे कौन चुप करवा सकता है? किसकी ताकत है?
बेटा भी कह गया है -
दोनों प्रेम से रहो। इस बुढ़ापे में दोनों का आपसी सहयोग और एकमत होना बहुत जरूरी है।

पर देविका कौन सा किसी कि परवाह करती है। जब अपनी पर आती है तो सामने कोई भी हो सुनाने से परहेज नहीं करती। चाहे किसी को बुरा लगे या अच्छा लगे। देवकी के संपूर्ण शरीर के टेस्ट करवाने की बात बेटे ओमी से की थी। पर देविका ने ओमी के सामने मुझे ही झाड़ कर रख दिया। वह ओमी के साथ जाने के लिए टस से मस न हुई। उलटा मुझसे बेटे के सामने लड़ने लग गई। बेटा हमारी बहुत चिंता करता है। प्रतिदिन दूरभाष पर हमारे स्वास्थ्य के विषय में पूछता रहता है। कभी बहु को कुछ समय के लिए गाँव छोड़ जाता है। पर देविका तो बहु को भी नहीं छोड़ती। उसे भी सुना देती। वह बेचारी मुलायम स्वभाव की रोने लग जाती। उसका प्रतिकार चाह कर भी न कर पाती।

मैंने सेवा निवृति के बाद अपने कपड़े धोने, प्रेस करने, शुरू कर दिये थे। मैं स्वयं को व्यस्त रखने का हर प्रयास करने लग गया था। हाँ, मैं देविका का पूरा ख्याल रखने का प्रयत्न कर रहा था। मेरी कोशिश थी कि शायद इस व्यवहार से देविका पर शायद मनोवैज्ञानिक प्रभाव हो।

एक दिन मेरी बहिन संतोष घर आई। उसने भी देविका को समझाया कि - इस भैंस को बेच दो। बच्चों के साथ ख़ुशी से रहो। उसी दिन मेरे साथ देविका ने खूब लड़ाई की। सत्य कहूँ, मेरा दिल आज फट गया था। टूट गया था। देविका ने मेरी बहिन के सामने हर कुछ कहा। अगली पिछली बातें नमक मिर्च लगाकर सुनाईं। संतोष दो दिन रहकर ससुराल चली गई। पिछली रात मैं सो नहीं पाया। दिल में आता रहा कि मैंने किसके लिए इतना जीवन झोंक दिया। मुझे उसका क्या सिला मिला? मैं नकारात्मक भावनाओं से पूरी तरह भर चुका था। पहले मेरे दिल में आया कि मैं अपनी

ईहलीला समाप्त कर लूँ। शेष जीवन किसने देखा? दुःख दर्द तकलीफों से तो छुटकारा मिल जायेगा। पर मैंने इस निर्णय को त्याग दिया। और मैं तीसरे पहर घर छोड़ने का दृढ़ निर्णय कर चुका था।

मैंने एक बैग में एक तौलिया और दो पहनने की जोड़ी डाली। अटैची से पैसे निकले। जेब में डाल लिए। रैक पर रखी चपल पांव में पहनी। चुपके से द्वार बंद कर खिसक लिया। देविका मुंह फेरकर दीवार की ओर सोई हुई थी। बाहर घुप्प अँधेरा था। मुझे डेढ़ किलोमीटर पैदल चलना था। दौलतपुर से मुझे बस मिलनी थी। ऊपर वाले का धन्यवाद कि मार्ग में मुझे कोई परिचित नहीं मिला। मैं सोचों में गुम था। कहाँ जाना है मुझे? सब कुछ अनिश्चित था। जहाँ भाग्य ले जाये चले चलेंगे।

दौलतपुर में पहुंचकर देखा बस अड्डे में काफी दुकाने खुल चुकी थीं। काफी लोग बसों की प्रतीक्षा कर रहे थे। पन्द्रह मिनट के बाद अम्बाला के लिए बस रुकी। मैं बस में सवार हो गया। मैंने अंबाला का टिकट ले लिया। सोच का सिलसिला जारी थी। देविका उठ गई होगी। लोगों से क्या बोलेगी? क्या कहेगी? इधर उधर देखकर, तलाशकर थक हार कर बैठ जाएगी। शायद थोड़ा पछतावे की भावना आई हो। मन में तरह तरह के विचार आ जा रहे थे। इसके आगे क्या? कहा जाऊँगा? सोचों में गुम मस्तिष्क में अकस्मात एक विचार कौंधा। क्यों न हरिद्वार चले चलूँ।

मार्ग में बस के रुकने पर भोजन किया। अम्बाला पहुंचकर हरिद्वार के लिए बस पकड़ ली। शाम को हरिद्वार खूब घूमा। लोगों की बेतहाशा भीड़। सब रंगीनियों में गुम। अपने में मस्त, अपने में व्यस्त। गऊ घाट की ओर निकल आया। अपनी दुनिया में खोये लोग। रात्रि को गंगा आरती देखी। मानव की व्यर्थता की ओर ध्यान चला गया। मुझ जैसे बोझ का इस दुनिया में क्या काम? जिसका अपने घर में सम्मान नहीं वह आदमी तो फिजूल है। निक्कमा है। किसी काम का नहीं। मेरे जैसा निराश हताश प्राणी कौन होगा? मैं तो समाज पर बोझ हूँ।

थक हारकर खाना खाकर, एक सराय के एक कमरे सोया रहा। प्रात: उठा। फिर गंगा की ओर निकल आया। स्नान करने वालों की अथाह भीड़। जन साधारण, साधु सन्यासी लोग। लोग जय गंगा माँ के उद्घोष लगाये जा रहे थे। कुछ लोग गंगा किनारे बैठ गंगा का नज़ारा कर रहे थे। पुलिस वाले मुस्तैदी से लोगों पर नजर रख रहे थे। बराबर पुलिस नियन्त्रण कक्ष से बराबर स्पीकर पर आवाज़ गूंज रही थी।

जेब कतरों से सावधान। अपने सामान की देखभाल खुद करें। अपने बच्चों की अंगुली पकड़ कर रखें।
कुछ गुमशुदा बच्चों के नाम पुकारे जा रहे थे। वहां का वातावरण आध्यात्मिक बन चुका था। कुछ पांडे अपने यजमानो के क्रिया कर्म के मन्त्र उच्चारण कर रहे थे। मृतकों के बच्चे नाईयों से अपने सिर मुढा रहे थे। कुछ क्षण के लिए मेरे मन में विचार उभर कर आया - मैं दुनिया में व्यर्थ हूँ। अपने आत्मीयों पर बोझ हूँ। मैं किसके लिए जी रहा हूँ? कौन है मेरा? कोई भी तो नहीं। यह जीवन एक झमेला है। क्यों न इससे छुटकारा पालूँ। मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि मुझे जल समाधि ले लेनी चाहिए।

दिमाग मेरा साथ दे रहा था। हाँ, तेरा निर्णय बहुत बढिया है। यह दुनिया वाले तो मूर्ख हैं। नादान हैं। यह क्या जानें तेरी महिमा? यह तो जीवन के मोह में व्यर्थ पड़े हुए हैं। ऐसी व्यर्थ दुनिया को मैं ठोकर मारता हूँ।

मैंने कपड़े उतारे। किनारे रख दिए। गंगा में आगे तक जाकर डुबकी लगा दी। मेरे कानों में पानी घुस गया था। कानों से सायं सायं की आवाज़ आ रही थी। मेरे हाथ पांव मेरा साथ नहीं दे रहे थे। एक सेकंड को मुझे लगा कि मैं अब डूब चला हूँ। मेरे मुख से निकला - ॐ नम: शिवाय। मैंने हाथ पांव मारना छोड़ दिया। शायद मुझे एक युवा कांस्टेबल ने गंगा के बहाव में बहते देख लिया था। शायद उसने मेरे निश्चय को भांप लिया था। उसने मेरे साथ कपड़े खोलकर फटाक से डुबकी लगा दी। युवा कांस्टेबल मुझे खींचकर बाहर ले आया।

बापूजी! क्या आपको अपना जीवन प्यारा नहीं? आपके आगे पीछे नहीं हैं क्या? कम से कम उनका तो सोच लेते आप। आपको पता भी है कि यह जीवन कितना अनमोल है। बेशक आप जीवन से निराश हुए होंगे। पर आत्महत्या समस्या का समाधान है क्या? मैं यहाँ कितने लोगों को देखता हूँ जो आत्महत्या के इरादे से आए होते हैं। पर मैंने लोगों को जीवन दान देने का दृढ निश्चय किया हुआ है। मेरी नजर उन लोगों पर पहले जाती है। आपको मैंने दूर से देख लिया था।

क्षण भर को मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा बेटा ही मुझसे मुखातिब हो रहा हो। सच कहूँ डुबकी लगाते समय एक क्षण के लिए मुझे अपने पोते के तुतले बोल अवश्य याद आये थे। शायद उस क्षण मेरी भावना से अधिक बलशाली मेरा दृढ निश्चय रहा हो। वह युवा कांस्टेबल मुझे स्वयं बस अड्डे तक छोड़ आया। मुझे बस में बिठा आया। मुझसे भविष्य में ऐसा करने की कसम भी ले बैठा। मन से मैं उस युवा को आशीष देने लगा था।

मेरे सामने प्रश्न था कि मैं अब जाऊं कहाँ? घर लौटने का मन कदापि नही था। वही रोज़ की किच किच। वही परेशानी। मैंने बेटे का पास जाने का निश्चय कर लिया। पोते से मिलूँगा। शायद मेरा विचलित मन संतोष पा जाये। बेटे के प्रश्नों का उत्तर दे दूंगा। पापा आप अकेले? माँ को कहाँ छोड़ आये?

बेटे ने प्रश्न उछाल दिया था। उसे अकेले में बिठाकर सभी प्रश्नों के उत्तर दे दिए। कुछ नहीं छिपाया। बेटे ने माँ को फोन कर दिया कि पापा मेरे पास हैं। कुछ दिन बेटे के पास रहा। फिर बेटे के जोर देने पर घर वापिस आ गया।

आखिर में अपना घर ही काम आयेगा। जितना मर्जी बाहर घूम आओ।आगे से मुझे और ताने मिलने लग गये। मन मस्तिष्क में आता कि पूरा जीवन मैंने आत्मसम्मान को समर्पित कर दिया। मेरा विद्यार्थियों, सहयोगियों में कितना सम्मान था। मेरे स्कूल परिणाम पर उच्च अधिकारी संतुष्ट रहते थे। मुझे शिक्षा विभाग की ओर से पुरुस्कारों से नमाजा जा चुका था। पर मेरे घर में मेरा सम्मान कहाँ था? हर समय मन में यही विचार आता कि घर में जिस प्राणी का सम्मान नहीं बाहर जितना मर्जी हो क्या अंतर पड़ता है?

मन मस्तिष्क में चौबीस घंटे यही विचार मुड़ घिर कर आने लगा था। मैं अपने मन की किसी से करना भी नहीं चाहता था। उलटा मेरी ही जग हंसाई होती। समस्या सुलझाने को लोग मुझे लिवा ले जाते। लेकिन मैं अपने घर कि समस्या को सुलझा पाने में असमर्थ था। रात के अँधेरे में मन रोने लगता। पूरा जीवन कमाई करके मैंने आखिर क्या पाया? कहाँ मुझसे जीवन में गलती हो गई? कहाँ चूक हो गई। अब देविका अपनी सखियों के सामने मेरी इज्जत का फलूदा करने लग गई थी। वे भी देविका का साथ देतीं। मैं अपना सा मुंह लेकर रह जाता। यह मेरे साथ क्या हो रहा है? मैंने तो किसी के साथ गलत नहीं किया फिर मेरे साथ ऐसा क्यों हो रहा है?

अब मुझे किसी के साथ मोह नहीं रह गया था। सब चीजें निरर्थक लगने लगी थीं। मुझे चलते फिरते लोग फजूल लगने लगे थे। निरे बेबकूफ़। जो जीवन जैसी फालतू चीज़ के मोह में फिजूल ही पड़े हुए हैं। अब मैं संवेदनशील प्राणी के रूप में दुनिया को ठोकर लगाने के योग्य समझने लग गया था।

सोते जागते मन में विचारों का झुरमुट आता जाता रहता। कौन सा ढंग ईजाद किया जाये आत्महत्या का? उसी से जुड़े ख्याल जेहन पर हावी रहने लगे थे। बेक ड्राप में एक ही सीन चलने लगा। हर समय एक ही बात। मेरे पास इसे जस्टिफाई करने के तर्क भी मन मस्तिष्क में उभरने लगे थे। कभी मन में आता गलफाह लगा लूँ। किसी ऊँचे पेड़ पर चढकर कूद जाऊं। मरने के उपरांत बदसूरत नहीं लगना चाहिए न। कहीं मृत्यु दर्दनाक तो न होगी? कई तरह कि दलीलें जन्म लेने लगी थीं।

आत्महत्या का एक बार प्रण लेने पर मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं एक नामी संत बन गया हूँ। मेरे भीतर क्रोध और चिढ़ जैसे समाप्त हो गई है। हाँ, बेटा बुरा महसूस करेगा। कोई बात नहीं थोड़े दिनों बाद कलप कर खामोश हो जायेगा। समय हर घाव को भर देता है। पता नहीं इस दुर्घटना के बाद उसके रिश्तेदारों कि क्या प्रतिक्रिया हो। लोग क्या कहेंगे क्या सोचेंगे? किसने देखा? मुझे अपना सहपाठी रोसो याद आने लगा था। एक ही बेंच पर बैठा करते थे हम। फ़ौज की नौकरी करके सेवा निवृति पर घर आया। अपने उससे किनारा करने लगे। अपनी औरत भी खाने को पड़े। बच्चे जिनको अंगुली पकड़कर चलना सिखाया था। वे दूर भागने लगे थे। सरीक झेलते नहीं थे। एक दिन अधिक शराब के सेवन करके नदी में कूद गया। सारे दुःख तकलीफों को चूल्हे में डाल गया रोसो। किसने देखा अगला जन्म? होता होगा? मन में कई विचार उपजते।

एक दिन मेरे और देविका के बीच काफी कहा सुनी हुई। उसने एक मुझे काफी बुरा भला कहा। अगली पिछली बातें, जली कटी

सब एक साथ कह सुनाई। मैंने खुद को कमरे में कैद कर लिया। अंदर से कुंडी लगा ली। मुझे डायरी लिखने का शौक था। उसके पहले पृष्ठ पर कुछ लिखने का विचार आया। पेन उठाया। लिख दिया - यह जीना भी कोई जीना है। ऐसे जीवन को क्यों न मैं तिलांजलि दे दूँ? जा देविका तुझे मैंने क्षमा किया।

फिर सोचा शायद इस डायरी को कोई तो पढ़ेगा और पढकर कोई मेरे बेटे को इस दुर्घटना की सूचना दे देगा। फिर अगली पंक्ति में बेटे का फोन नंबर और उसका पूरा पता लिख दिया। कुछ सोचकर स्टोर में घुस गया। अपना हाथ गेहूं के ड्रम की ओर बढ़ाया। यहीं तो रखी थी कीड़े मारने की दवा। नीचे तक हाथ घुमाया। कीड़ों को मारने की दवाई अलग -अलग कपड़े में बांधकर गांठ मार कर रखी हुई थी। कपड़े को खोला। आधी पुड़िया को कागज़ में डाला। और आधी पुड़िया को कुर्ते की जेब में डाल लिया। मान लो पहले वाली पुड़िया कारगर साबित नहीं हुई तो दूसरी पुड़िया पूरी निगल लूँगा। कागज़ की पुड़िया को हाथ से खोला। आँखें बंद की। कसैला स्वाद मुंह में घुल गया। आँखें बंद करके पुड़िया को निगल लिया। पूरा गिलास पानी गटक गया। ऊपर वाले से इस अक्षम्य अपराध के लिए क्षमा मांग ली।

हे प्रभु! मुझे इस अक्षम्य अपराध के लिए क्षमा करना।
विष धीरे धीरे असर करने लगा था। मुझे लगा मेरी आँखें धीरे धीरे बंद हो रही हैं।

•••

यादों की चादर

लघु कथा:- डॉ. क्षमा सिसोदिया

“आज वर्षों बाद भी ऐसा क्यों नहीं लगता है कि यह बहुत पुरानी बात है...? कभी-कभी तो ऐसा क्षण आता है, जैसे वह कहीं आस-पास ही है।

क्या रूह भी सब बातें याद रखती है...? वह अपनों के आस-पास ही घूमती रहती है या फिर अपना मन ही उनके आस-पास घूमता रहता है...?”

“नहीं, ऐसे कैसे हो सकता है। मैं तो अपने काम में दिन भर व्यस्त रहती हूँ और रात होते ही थक कर सो जाती हूँ। तो फिर उन यादों को याद कब करती हूँ? नहीं, मैं याद नहीं करती हूँ, मैं तो बहुत मजबूत औरत हूँ।”

इन बातों से मिष्ठी लगातार अपने अंदर बैठी उस औरत को समझाती जा रही थी, जो आज का दिन आते ही कमजोर होने लगती है और खुद को यादों के साथ अकेले रखने में ही अधिक खुश रहती है।

लेकिन फिर ऐसा क्या होता है कि आज के दिन ‘मिष्ठी’ नाम की यह महिला किसी से भी मिलना नहीं चाहती है, जबकि इस दिन के लिए तो लोग कितना धूम-धाम और खुशी मनाते हैं, और ‘मिष्ठी’ ठीक इसका उल्टा करती है। उसको इस विशेष दिन पर लोगों की भीड़ सुकून देने के स्थान पर दुःखी करती है, शायद इसीलिए...।

“नहीं, वह तो अक्सर ही इस तरह के नकली लोगों के भीड़ से गुजरती रहती है, यह कोई नई बात थोड़ी न है।”

“नहीं, नहीं, यह सब कहाँ...?
उसे तो मुकेश की यादें ही तसल्ली देती हैं। सच में वह उसे कितना प्यार करता था। पहला जन्मदिन तीन दिन तक लगातार मनाया था, उसका पक्ष लेने की वजह से वह परिवार में खुद बुरा बन जाता था।

मिष्ठी को खुश रखने के लिए वह खुद को कितना बदल डाला था। शायद इसलिए ही वह अपने जन्मदिन के अवसर पर ऐसा करती है और उसकी यादों का सुनहरी चादर बना कर उसे ओढ़ अकेली ही खुश हो लेती है। उसको अपने अंदर छुपे हुए सावन-भादों से किसी और को ‘रूबरू’ जो नहीं होने देना होता है।

“चल, सो जा मिष्ठी। बहुत रात हो गई है, देख अब तो तारीख भी बदल गई।”

•••

दादी का आंगन

संस्मरण:- गणपत सिंह भदौरिया

आज़ भी शहर के फ्लैट की बालकनी से, नीले आसमान को निहारता हूं, तो बरबस याद आता है — 'दादी का आंगन।'
वो आंगन जहाँ, दिन चिड़ियों की चहचहाहट से शुरू होता था और रातें चांदनी में घुल जाती थीं। दादी का घर मिट्टी का था, पर उसका आंगन दुनिया का सबसे बड़ा खेल का मैदान लगता था।

दादी सुबह जल्दी स्नान कर, तुलसी के चौरे पर दिया जलातीं, और कहतीं — "ये रोशनी घर में ही नहीं, मन-मंदिर में भी जलानी होती है।" मैं तब इतना छोटा था कि उस बात का मतलब नहीं समझ पाता था, पर आज वो हर पल जैसे ज़िन्दगी का मंत्र बन गया है। बरसात में वही आंगन छोटा-सा तालाब बन जाता।

मैं और भाई-बहन, उसमें कागज की नाव तैराते, और दादी बरामदे में, हंसते हुए, आवाज देती — "नाव डूबे तो डरना मत, डुबकी लगाना सीखना।" तब नहीं समझा था, पर आज लगता है — "वो सिर्फ नावों की नहीं, जीवन की डूब-उतराई सिखा रहीं थीं।"

हर दोपहर दादी चारपाई पर बैठकर, आम का आचार सूखवातीं, और हमें पुराने किस्से सुनातीं। गांव में बिजली नहीं थी, पर दिलों में उजाला था। उनकी झुर्रियों में पूरा गांव बसा था — "ममता, सादगी और अनुभव की खुश्बू।"

समय बीता, मैं पढ़ाई के लिए शहर आ गया। दादी टेलीफ़ोन पर हमेशा पूंछती —"घर का आंगन याद आता है क्या?"

मैं हंसकर कहता —"वहाँ अब क्या रखा है, दादी?"
दादी बस इतना कहतीं — "आंगन में घर की जड़ें होती हैं, बेटा।"

फिर एक दिन, अचानक ख़बर आई — "दादी नहीं रहीं।"
मैं ट्रेन पकड़कर घर पहुंचा। आंगन वही था — पर अब वहाँ सन्नाटा पसरा था। तुलसी का चौरा बुझा पड़ा था और हवा में बस मानो दादी की आवाज गूंज रही थी — "रोशनी मन-मंदिर में जलानी होती है...." मैंने वही बुझा हुआ दिया फिर से जलाया, और लगा जैसे दादी अब भी वहीं हैं — बस रूप बदलकर, याद बनकर।

अब जब भी वारिस होती है या चांदनी खिलती है, मैं आंखें बंद कर लेता हूं। वो आंगन, वो तुलसी, वो दादी — सब लौट आते हैं। अब शहर में मिट्टी का घर नहीं रहा, पर मन का आंगन अब भी उसी रोशनी से जगमगा उठता है।

•••

हाइकु

कश्मीरी लाल चावला

1. खेतों के बीच
   किसान बीज बीजे
   उगता गेहूँ
2. सेम के साथ
   फसल मारी गई
   दुखी किसान
3. जो लिखा गया
   सो विचारा गया है
   उदास ना हो
4. लंबी हो गई
   मेरी हाइकु माला
   पढ़ी ना जाए
5. कभी ना बुझे
   जो शब्दों की लोअ है
   मातृ भाषा है
6. जलता रहे
   मातृ भाषा का दीप
   हर भूमि पे
7. ढलती शाम
   दे रही दस्तक है
   आएगी रात
8. बीती रात है
   यादगार हो गई
   भूली ना जाए
9. घटते पक्षी
   बढ़ती जन संख्या
   एक खतरा
10. नमस्कार है
    रावी सतलुज को
    भूमि सींचते
    कश्मीरी लाल चावला

•••

आखिरी मुलाकात

संस्मरण:- विजयानन्द विजय

मैं उन्हें अपना बड़ा भाई मानता था। वे भी मुझे छोटे भाई-सा दुलार देते थे। खून का रिश्ता तो नहीं था हमारा, मगर किसी दैवीय शक्ति से एक-दूसरे से गहराई तक जुड़े थे हम।
मैंने नयी-नयी सरकारी नौकरी ज्वाइन की थी। मेरी पोस्टिंग बक्सर (बिहार) में थी। वे मेरे सीनियर थे। राज्य के सुदूर दूसरे छोर के रहने वाले थे। इस शहर के बारे में वे बहुत कम जानते थे। इधर आने के बारे में कभी सोचा भी नहीं था। वे मेरे घर से थोड़ी दूरी पर किराये के एक मकान में रहते थे।

हम अक्सर साथ-साथ ड्यूटी पर जाते थे। एक ही जगह काम करते थे। ऑफिस में वे मुझ पर पूरा ध्यान रखते। सरकारी विभाग के नियम-कानून के बारे में हमेशा बताते-समझाते रहते। मुझे किसी काम में परेशान देखकर पता नहीं कैसे वे भांप जाते थे। उठकर मेरे पास आते थे और पूछते थे। कागज-कलम लेकर मेरे काम को दुरुस्त करने में लग जाते थे। मैं चकित हो बस उन्हें देखता रह जाता था।

काम पूरा कर वे मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए मुस्कुराकर कहते — "बस, हो गया।"

मैं उन्हें धन्यवाद कहता, तो वे डांट देते और मुस्कुराकर गले लगा लेते।

ऑफिस से लौटने के बाद शाम को कभी मैं उनके घर जाता, कभी वे मेरे घर आते थे। साथ-साथ हम चाय पीते थे। यह सिलसिला अनवरत चलता रहा। यह बड़ा विचित्र संयोग ही था कि चुनाव कार्य में भी हमारी ड्यूटी साथ-साथ ही लगती। वे मुझे मतदान कार्य सम्पन्न कराने की पूरी प्रक्रिया समझाते। मेरा पेपर वर्क कर मुझे सिखाते। प्रेम से डांटते भी। हम एक-दूसरे के पूरक बन गये थे।

वे कहा करते कि हम किसी जन्म में जरूर भाई-भाई रहे होंगे, ईश्वर ने फिर हमें मिला दिया है। चुनाव ड्यूटी के दौरान वे बिस्कुट-मिक्सचर-चूड़ा साथ रखते और बड़े प्यार से मुझे खिलाते।
तीन वर्ष के बाद मेरा ट्रांसफर दूसरे शहर में हो गया। मैं सुबह ड्यूटी पर निकलता था, तो लौटते-लौटते रात हो जाती थी। हम रोज मिल नहीं पाते थे। मोबाइल का जमाना नहीं था। मुझे पता चलता — वे घर आकर मां-पत्नी-बच्चों से मेरे बारे में पूछकर आश्वस्त हो, चले जाते थे।

शनिवार को मैं थोड़ा पहले आ जाता था। शाम को वे भाभी के साथ अपने घर पर बेसब्री से मेरा इंतजार कर रहे होते थे। मैं नियमित रूप से शाम पाँच बजे उनके घर पहुंचता था। मुझे देखते ही उनके चेहरे पर चमक आ जाती थी। जब भी मैं उन्हें प्रणाम करता, तो वे मुझे गले लगा लेते।

भाभी विह्वल नेत्रों से भाई-भाई का यह प्रेम निहारती रहतीं। हम साथ बैठकर चाय पीते थे। कभी भाभी बड़े प्रेम से भूंजा बनाकर लातीं थीं। देर तक ढेर सारी बातें होतीं थीं।

फिर प्रोमोशन के साथ उनका ट्रांसफर हो गया। बिछुड़ने की पीड़ा से मन थोड़ी देर को दुःखी हुआ। फिर मैंने मन को किसी तरह समझाया।

उस दिन, जब उन्हें शहर छोड़कर हमेशा के लिए जाना था, स्टेशन पर ट्रेन के इंतजार में मैं उनके साथ था। वे मुझे देख रहे थे और मैं उन्हें देख रहा था। चश्मे के पीछे उनकी आंखों से बहते आंसू देख मेरा जी भर आया था। भाभी की आंखें भी डबडबा गयी थीं। न जाने रिश्ते की कौन सी डोर थी, जो हमें बांधे हुए थी।

ट्रेन आई। सारा सामान चढ़ाकर, उनके चरण स्पर्श कर चलने को हुआ, तो उन्होंने हाथ पकड़ मुझे भी ट्रेन में खींच लिया। बगल में बिठाया। मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा —
"हम फिर कब मिलेंगे?"
मैंने उनकी आंखों में देखते हुए कहा — "बहुत जल्दी भैया।"
और अपने आंसुओं को रोकने का निरर्थक प्रयास करता हुआ मैं ट्रेन से नीचे उतर गया।

ट्रेन ने गति पकड़ी, तो नजरों से ओझल होने तक वे खिड़की से हाथ हिलाते रहे। शायद यह हमारी आखिरी मुलाकात थी। उनके जाने के बाद फोन से बातें होतीं थीं। मेरा कुशलक्षेम जान उन्हें सुकून मिल जाता था। अचानक एक दिन मुझे सूचना मिली कि हृदयगति रूकने से उनका देहान्त हो गया है।

बरसों से संचित और सिंचित निःशब्द भावनाएं आंसू बनकर आंखों में उतर आईं। श्राद्धकर्म में मैं उनके गांव गया। भाभी ने मुझे देखते ही मेरा हाथ पकड़कर पूछा —
"आपके रामजी कहां गये?"
वे अक्सर मुझे अपना लक्ष्मण कहती थीं। और कहा —
"रोना नहीं है, उन्हें दुःख होगा।"

भाभी के शब्द मुझे भावनाओं की उन अतल गहराईयों में ले गये, जहां शब्द गौण हो जाते हैं, सिर्फ अहसास और संवेदनाएं ही जिंदा रहती हैं। मुझे याद नहीं, उस समय कैसे मैंने अपने आंसुओं को रोका था।

उस दिन मैंने महसूस किया कि कुछ रिश्ते इंसानी दुनिया से परे होते हैं — दैवीय शक्ति से बंधे होते हैं। सचमुच, विपिन बाबू मेरे अपनों से भी अपने थे। उनका प्रेम निःस्वार्थ, निश्छल था। उनके गांव के लोग कहा करते थे कि वे इंसान नहीं, देवता थे।
उनके शब्द आज भी मेरे कानों में गूंजते हैं। उन्हें मैं आज भी अपने आसपास महसूस करता हूँ और मुझे विश्वास है कि वे जहां भी हैं, मुझपर स्नेहिल नजर रखे हुए हैं।

उनको गये बीस साल से ऊपर हो गये, मगर आज भी लगता है कि वे मेरे आस-पास ही हैं। भाभी और बच्चों से हमेशा बातचीत होती है। आज भी वे मेरे 'राम' हैं और मैं उनका प्यारा 'लक्ष्मण' — जीवन के शर-संधान में लगा हुआ।
वे सदा मेरे साथ हैं — मेरी स्मृतियों में!

•••

अनकहे एहसास

कविता:- प्रीति शर्मा 'असीम'

... को कुछ ख्याल आया ।
गुजरे वक्त की कुछ यादों को,
उसने पास बुलाया।।
वक्त आया ही नहीं ... या
मैं ही साथ चल ना ... पाया।
आज ख्याल आया ... तो
बहुत- कुछ धुंधला- धुंधला सा याद आया ।

अनकहे एहसास को कुछ ख्याल आया ।
गुजरे वक्त की कुछ यादों को उसने पास बुलाया ।
तुमने देखा है .....मेरा इंतजार
जो खत्म होने पर ही ना... आया ।
सब्र के मीठे फल को मैंने कहा पाया ।
बहार गुजरी ही नहीं उस शहर से ।
जहां मैंने घर बनाया।।

छोड़ा... क्यों नहीं ।
फिर... उस सवाल ने भी सर उठाया ।
आज ख्याल आया... तो
बहुत -कुछ धुंधला -धुंधला -सा याद आया।

अनकहे एहसास को
बाद... उम्र के ख्याल आया।
हाथ कुछ भी तो आज तक नहीं आया ।।
मेहनत से जो कमा पाया।
अहसास रखना था
और ... अपने ही
अनकहे एहसास को ना समझ पाया।
खुद को मिटाता ही चला गया ।
आज सोचता हूँ.... खुद को ही खाली पाया।

वक्त के कंधे पर सर रखकर।
उन अहसासों ने नम आंखों से वो वक्त दोहराया ।
अनकहे एहसास को
जिंदगी के आखिरी मोड़ पर
उन एहसासों का ख्याल आया।।

•••

पहली मुलाक़ात के आखिरी होने के मायने

संस्मरण:- संदीप तोमर

सन् 1999 में मैं दिल्ली आ गया लेकिन साहित्य से नाता सन् 2001 से हुआ, नाता क्या हुआ लेखन शुरू हुआ। अस्सी के दसक से पहले से ही देश के कोने-कोने से साहित्यकार, पत्रकार और शिक्षक दिल्ली आकर अपनी साधना में रत् थे। दिल्ली एक विशेष सारस्वत दीप्ति से भरी रही है। उस दीप्ति का एक भाग मेरे हिस्से भी यदा-कदा आता रहा है।

इसी कड़ी में 15 सितम्बर 2020 की शाम सुभाष नीरव का फोन आया।
"आज शाम को फ्री (खाली) हो?"
"जी, बताइये, क्या काम है?"
"नरेंद्र मोहन राजोरी गार्डन रहते हैं, उनसे मिलने जाने का तय है, मैं चाहता था तुम भी साथ चलो।"
"....."
"क्या बात है मूड नहीं है चलने का?"
"नहीं, वह बात नहीं है।"
"तो क्या बात है?"

"बिना पूर्व परिचय के क्या इस प्रकार जाना उचित रहेगा?"
"अरे भाई, वे अनूठे व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनसे तुम्हें साथ लाने की अनुमति भी ले ली है और तुम्हारा और तुम्हारे साहित्य का हल्का-फुल्का परिचय भी दे दिया है। उनसे तुम्हारे बारे में चर्चा हो चुकी है।"

"मुझे खुशी होगी। आप समय बताइये, मैं आपको घर से ले लूँगा, इत्मीनान से अपने स्कूटर से आपको ले चलूँगा।"

मैं बेहद खुश था, खुश इसलिए कि काफी समय से सोच रहा था कि उम्रदराज साहित्यकारो की सूची बनाकर उनसे भेंटवार्ता करूँगा, उनका एक औपचारिक साक्षात्कार लूँगा। अच्छा था कि सुभाष नीरव की मार्फत नरेन्द्र मोहन जी से भेंट हो जायेगी। राजोरी गार्डन के हरे रंग के फ्लैट्स की सोसाइटी में थोड़ी खोजबीन के बाद उनका मकान खोजने में हम दोनों कामयाब हो गए। मकान का पहला कमरा काफी बड़ा और किताबों से भरा हुआ, सुभाष जी ने बताया कि यहाँ नरेंद्र जी की बेटी बैठती है। हम मकान के सबसे अंतिम छोर तक गए जहाँ नरेंद्र जी का अध्ययन कक्ष था। पहली मुलाक़ात के चलते मैं थोड़ा नर्वस और शांत था। औपचारिक अभिवादन के साथ हम सोफ़े पर पसर गए।
इस बीच नरेन्द्र मोहन जी खाने के लिए नमकीन-बिस्किट लेकर आ गए। बैठकर बातचीत शुरू हुई। उनका व्यवहार और बातचीत का अंदाज देखकर मैं गहरे में प्रभावित हुआ। प्रभावित इसलिए भी हुआ कि एक समीक्षक, नाटककार, कवि से संयुक्त रूप से इस तरह पहली बार मिल रहा था।

"नरेंद्र जी, आपको बहुत पहले से दैनिक जागरण के माध्यम से जान रहा हूँ, प्रत्यक्ष मुलाक़ात पहली बार हुई है।"
सुनकर वे असमंजस में मुझे देखने लगे।

"सर, दैनिक जागरण के रविवारीय पृष्ठ पर आपकी कवितायें छपती थी, जिनकी कटिंग आज भी मेरे पास हैं।"
अब उन्होने मामले का खुलासा करते हुए कहा-"संदीप! जिनकी

बात तुम कर रहे हो, वे अलग नरेंद्र हैं, भाई तुम्हें अकेले को नहीं बल्कि बहुतों को ये भ्रम होता रहा है, कई बार तो उनकी (उनके व्यक्तित्व की) बजह से मुझे स्पष्टीकरण भी देना पड़ा की मैं वह नरेंद्र मोहन नहीं हूँ।"

इस बात पर हम तीनों खूब देर तक हँसते रहे।
दिल्ली का लॉक-डॉउन, फिर अनलॉक डॉउन और इस कोरोना काल में घर में बन्द रहते-रहते उकताहट, बोरियत और अवसाद के क्षणों के बीच सुभाष जी का स्वास्थ्य का ग्राफ़ ऊपर-नीचे होता रहा था, हालाकि इस बीच भी वे कभी कुछ अनुवाद, कभी कुछ मौलिक लेखन करते रहे। उनसे बात करते हुए मुझे लगता मानो वे हाथ मिलाकर और गले मिलकर मिलने की कमी को ज्यादा महसूस कर रहे हैं। फोन पर निरंतर बातचीत के जरिये मैं इस कमी को कम करने का प्रयास करता रहा। एक दिन मैंने घरों से कुछ देर बाहर निकल कहीं बैठने की योजना बनाई और हम पहली बार घरों से बाहर निकले, सिर्फ़ अपने लिए, एक-दूजे से मिलने के लिए। 29 अगस्त 2020 को हम जनकपुरी के एक रेस्टोरेंट में ढाई-तीन घण्टे बैठे, उन एतिहातों का पालन करते हुए जो कोरोना काल में बेहद ज़रूरी हैं। ऐसा ही अवसर था डॉ. नरेन्द्र मोहन जी से उनके राजौरी गार्डन निवास पर मिलने का। जैसे इस समय सब बेताब थे कि किसी अपने से मुलाक़ात हो, हमें लगा कि वह भी बेताब थे किसी से मिलने को... उनके चेहरे पर प्रसन्नता थी, वह खुश दिख रहे थे। उनके निवास पर मेरी उनसे पहली और सुभाष जी की यह दूसरी मुलाकात थी।

यह बेहद खुशनुमा मुलाकात थी, ढेर-ढेर बातों भरी मुलाकात। इसमें साहित्य, किताबों, नाटकों, प्रकाशनों से जुड़ी बातें शामिल थी। देश-दुनिया की बातें करते हुए हम भूल गए कि कोरोना क्या है। एक दिन पहले ही डॉ. साहब की मंटो पर लिखी जीवनी 'मंटो ज़िन्दा है' का तेलुगु संस्करण छपकर आया था। जिसे Chaaya Resources Centre, Hyderabad ने बहुत खूबसूरत छापा है। इसका तेलुगु में अनुवाद डॉ. टी. सी. वसंता ने किया है। उनके निवास-स्थान पर हिन्दी के सुपरिचित कथाकार, कवि एवं अनुवादक श्री सुभाष नीरव के हाथों डॉ. साहब की इस पुस्तक का लोकार्पण हुआ, इस गौरवमयी क्षण का गवाह मैं भी बना। इस मुक़द्दस मौके पर तब मैंने कहा था–"गोर्की, चेखव और मोपासाँ जैसे कथाकारों के साथ विश्व के कथा-शीर्ष पर खड़ा मंटो अपने समय का बेहतरीन लेखक है। आज उस लेखक का जन्मदिन है। और आज हम उस महान लेखक से भारत की नयी पीढ़ी को परिचित करने वाले लेखक के साथ उसे याद कर रहे हैं। किताबों का आदान-प्रदान हुआ। सुभाष जी ने अपना सद्य प्रकाशित कविता संग्रह 'बिन पानी समंदर' जो प्रलेक प्रकाशन से प्रकाशित होकर आय था , की एक प्रति डॉ. नरेन्द्र मोहन जी को भेंट की। सुभाष जी की यह पुस्तक उन्हीं को समर्पित है। उन्होने 2019 में किताबगंज प्रकाशन से छपे अपने लघुकथा संग्रह 'बारिश तथा अन्य लघुकथाओं' की एक प्रति भेंट की, जिसकी मेरे द्वारा लिखी समीक्षा कई जगह प्रकाशित है। मैंने भी अपनी एक संपादित किताब उन्हें भेंट की। "महक अभी बाकी है" की कविताओं पर नज़र डालते हुए उन्होने कहा-"संदीप! इतनी कम आयु में जो साहित्य की समझ तुम्हें है, उसके आधार पर अपने अनुभव से कह रहा हूँ, तुममे साहित्य की असीमित संभावनाएं हैं। राजनीति इत्यादि पर लेखन से परे कविता की आलोचना पर बिना कोई शोर किए कुछ सार्थक काम करो।"

"लेकिन मैं तो गद्य लेखन पर खुद को अधिक फोकस रखता हूँ, कविता की आलोचना पर क्या ही काम कर पाऊँगा?" डॉ. साहब ने विस्तार से समझाया कि क्या और कैसे करना है और मेरी मदद का पूरा आश्वासन दिया। मन प्रफुल्लित हुआ कि लेखन में प्रथम गुरु मिल गए। वार्तालाप से समझ आया कि उनमें अन्तर्दृष्टि थी, चीजों को उनकी केन्द्रीयता में पहचानने की दीप्ति थी और भाषा में समीक्षकीय भाषा की संश्लिष्टता थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि मेरी प्रतिभा को निखारने की मंशा को भी तटस्थ भाव से उजागर किया गया था। बातचीत में उन्होने पूछा-"संदीप, क्या-क्या लिखा है तुमने?" जी, कहानियाँ, उपन्यास, कुछ कवितायें और लघुकथा, वैसे दो भाग आत्मकथा के भी आ चुके हैं।"

सुनकर वे खुश हुए। मैंने बताया-"सर, अभी एक डायरी के प्रकाशन की भी योजना है, मोहन राकेश की डायरी जो उनकी तीसरी पत्नी अनीता राकेश ने संपादित की, उसे पढ़कर, उससे प्रेरित होकर ही ये डायरी लिखनी शुरू की थी।"
डॉ० साहब ने अपनी हाल में प्रकाशित डायरी की प्रति दिखाते हुए कहा-"मैं अपने लेखन के शुरुआती समय से डायरी लेखन कर रहा हूँ।" डायरी पर चर्चा करते हुए सुभाष जी ने कई सवाल किए जिनके प्रत्युत्तर में उन्होने कहा-"डायरी कोई रोजनामचा नहीं होता, डायरी एक अनूठी विधा है, जिसमें लेखक को अधिक सजग होकर घटनाओं का चयन और वर्णन करना होता है।"
यह उनसे पहली भेंट हुई जिसमें उनका प्रत्यक्ष व्यक्तित्व तो सामने था ही, उनके नरम नरम स्वभाव का उजास भी उसमें मिला हुआ था। लम्बी-चौड़ी काया, चेहरे पर गहरी निश्छल मुस्कराहट, आँखों में स्वागत का भाव और अपनापन दे देने के लिए उत्सुकता। पहली ही भेंट में भा गये थे, गुरु मान लिया था डॉ० साहब को।
बातचीत के बीच वे कमरे से उठकर गए और खीर की दो कटोरी ट्रे में रखकर लाये। मैंने उन्हें बताया कि खीर मेरा पसंदीदा व्यंजन है। बातचीत के समय सुभाष जी लगातार फोटो क्लिक करते रहे थे। डॉ० साहब साहित्य पर, अपने पसंदीदा लेखक मंटो पर, मिस्टर जिन्ना नाटक पर चर्चा करते रहे, मैं और सुभाष जी मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहे। मन में विचार उठते रहे कि आज से शुरू हुई ये नयी

यात्रा अनंत काल तक चलती रहे। न जाने कितनी शामों, कितनी सुबहों, कितने गोष्ठी-प्रसंगों, कितनी यात्राओं के भविष्य के सपने मेरी आँखों के सामने तैरने लगे। एक लंबी मुलाक़ात के बाद मैं और सुभाष जी अपनी झोली में अनुभव, स्मृति का खजाना, स्नेह, और भविष्य की योजना लेकर वापिस लौट आए।
उनके सुझाए गए विषय, कविता पर आलोचनात्मक लेखन का सपना मुझे हर पल याद रहता, मुझे लगता रहा कि दो-चार मुलाकातों के बाद कुछ और मार्गदर्शन मिलेगा तो साहित्य में कुछ नया कर पाऊँगा। इस बीच उनके बारे में शोधपरक साहित्य भी पढ़ा। जितना पढ़ता गया उतना ही गहरे साहित्य में उतरता चला गया।

मंटो जिंदा है के तेलुगु संस्करण के लोकार्पण की रिपोर्ट लिखकर कुछ अखबारो में भेजी, छपकर आई तो नरेंद्र जी को उनके मोबाइल पर भेजी, कॉल करके आभार व्यक्त करते हुए उन्होने अपनी खुशी प्रकट की, अनुभव हुआ कि रचनाकार को हर कृति की खुशी प्रथम रचना की तरह ही होती है।

नरेंद्र जी की संवेदनाओं और विचारों की आवाजाही उनके लेखन को पढ़कर होती रही और मैं खुद को उनके करीब पाता गया। उनसे पुनः मिलने की रूपरेखा बना ही रहा था कि पता चला- वे अस्पताल में भर्ती हैं, फिर वह समय आया कि नई पीढ़ी को मण्टो से परिचित कराने वाले नरेंन्द्र जी हमारे बीच नहीं रहे। उस दिन नरेन्द्र मोहन जी ने मंटो के ऊपर विस्तृत बातचीत की थी। मन में रुदन चलता रहा, एक अभिभावक मित्र मुझे छोड़ गए थे। अभी उनके साथ बैठकर बहुत कुछ सीखना था। उनके जाने की खबर से बहुत विचलित हुआ। उस पहली मुलाक़ात में करीब तीन घण्टे हम डॉ. नरेन्द्र मोहन जी के साथ रहे थे।। कोरोना काल में यह हमारी एक अविस्मरणीय मुलाकात बन गई थी। खाली-खाली से गए थे, लौटे तो भरे-पूरे थे। इस मुलाकात की कुछ तस्वीरे मेरे लैपटाप में उनकी यादों के साथ हैं।

मैं सदा अनुभव करता रहा हूँ कि मैं जो कुछ बना हूँ, बहुत बड़ी सख्शियतों के बीच बना हूँ। राजेन्द्र यादव, रामदरश मिश्र, नरेंद्र मोहन उनमें सर्वोपरि हैं। परस्पर वैचारिक और संवेदनात्मक आवाजाही करते हुए हम खुद को बनाने के लिए बहुत कुछ प्राप्त करते हैं। दूसरों के आकलन से हमें खुद को समझने में सहायता मिलती है। मन कहता है-"गुरुजी ऐसी भी क्या जल्दी थी जाने की, अभी तो आपसे लेकर खुद को और समृद्ध करना था, नए सोपान रचने में आपकी जो भूमिका तय थी, उसके लिए क्या उपाय हो?"

•••

अधूरी मुलाकात

कविता:- अंजू कुलकर्णी

जिनके कई पड़ाव हैं
अक्सर ठहर जाती हूं उन पड़ावों पर
पर एक पड़ाव बहुत जिद्दी है, बहुत ही
वो छत पर आना तेरा
मेरी पेशानी को चूमना तेरा
लबों पर शरारत और उंगलियों में लिपटता दुपट्टा मेरा
पलकों का वो उठना और गिरना
खुद में ही सिमटना
जहां तुम खामोश थे
बोल रहे थे स्पर्श तुम्हारे
कविताएं मौन थी
महसूस कर रही थी
अनकहे शब्दों की मीठी बोलियां
धीमी सी खटपट और
छुड़ाकर बाहों का घेरा
मुखमुद्रा लाल गुलाबी हो
सीढ़ियों को द्रुत गति से पीछे छोड़कर
अपने आँगन से छत की तरफ तकना
फिर से तुम्हें देखने के लिये
एक अधूरी मुलाकात को मुकम्मल करने के लिये
गाहे बहाये
सूखते जा रहे
मुलाकातों के दरख्त
सींचती रहती हूं
अश्रुपूर्ण नमी से
एक अधूरी प्यास लिये ...

•••

मालदीव-यात्रा

संस्मरण:- डॉ. क्षमा सिसोदिया

“वही गम, वही शाम, वही तन्हाई है”, फिर भी दिल को समझाने यह याद चली आयी है।

“Cota Victoria Cruise यात्रा की कुछ यादें।”
अभी कुछ दिनों पूर्व महाराष्ट्र में समुद्र आए तूफान से लड़ते और समुद्र की विकरालता से जूझते हुए अथाह सागर के जल में गोते लगाते समय जब एक शिप को देखा, तो विगत दिनों में अपनी समुद्रीय यात्रा याद आ गई और लिखने बैठी, तो जैसे कलम भी लहरों के भंवर में बीच-बीच में यादों से रूबरू होते हुए रूक-रूक कर चलती रही।

हमारे ग्रुप के सभी साहित्यकार सदस्यों की यह पहली समुद्रीय यात्रा थी। दुबई से निकल कर सुबह 5:30 से 6 बजे के करीब कोच्चि पहुँचे। टूरिस्ट बस आने में देर थी, तो एयरपोर्ट पर ही नियमित मार्निंग वाक के साथ ही सुबह का मंत्र जाप सम्पन्न हुआ। फिर उसके बाद तो चाय की तलब लगी, लेकिन चाय तक का कहीं अता-पता नहीं था। हम लोग वहीं रूक कर अगले गंतव्य तक पहुँचने के लिए बस का इंतजार करने लगे।

ग्रुप की एक सदस्या जिनके पाँव में बहुत दर्द था, वे अधिक देर तक खड़े रहने में शारीरिक रूप से सक्षम नहीं थीं। मैंने बिना सोचे ही सामने के बैग पर उन्हें बैठने के लिए बोल दिया। उन्हें बैठे हुए अभी पाँच मिनट भी नहीं हुआ था कि वह बैग का मालिक दौड़ता हुआ आया और उन्हें इतनी तेजी से धक्का दिया कि अगर मैं नहीं पकड़ती, तो वह औंधे मुँह जमीन पर गिर जातीं।

यह दृश्य देख कर मैं हतप्रभ रह गई। जो सज्जन थोड़ी देर पहले मांसाहार पर लेक्चर दे रहे थे, उस शाकाहारी सज्जन की हरकत क्या बोल रही है...?

थोड़ी देर इधर-उधर टाइम पास करने के बाद बस आई और हम सब लोग उस टूरिस्ट बस में बैठ कर बंदरगाह के लिए चल पड़े। अभी थोड़ी दूर ही पहुँचे थे कि— “सड़क पर कुछ लोग सफेद लुंगी पहने खड़े दिखाई देते हैं और गुड़-मुड, गुड़मुड आवाज में बोलते हुए बस को रोकते हैं।”
क्यों...?
“क्योंकि आज भारत बंद है।”

फिर बस से उतर कर ड्राइवर अपनी साउथ इंडियन भाषा में कुछ बोलता है। इतनी देर में भीड़ से एक नेतानुमा शख्स आकर बस की चाबी निकाल लेता है। बस ड्राइवर बस से उतर कर कुछ बात करता और फिर बस को लेकर आगे बढ़ता।

वहाँ पहुँचने पर मौसम का ऐसा मिज़ाज़ था, जैसे मई-जून का तपता महीना हो—भयंकर गर्मी और पीने के लिए पानी तक नहीं। उफ्फ्फ... इमिग्रेशन का काम कम्प्लीट करने के बाद आस-पास लगी दुकानों का जायज़ा लेने के लिए पहुँचे। एक दुकानदार से चाय के लिए पूछे, उसने पीने के लिए पानी तो दे दिया, लेकिन भारत बंद की वजह से चाय कहीं नहीं मिली। वहाँ से कुछ खरीदारी करने के बाद प्रवेश का समय हो गया और सभी यात्री शिप में प्रवेश किए।

भारत बंद के कारण सुबह से बिना कुछ खाए-पिए ही अब दिन के दो बज चुके थे। भूख के मारे आँतें कुलबुला रही थीं। क्रूज़ पर पहुँचने पर जब पता चला कि लंच टाइम 3 से 3:30 तक ही रहेगा और शाम की चाय शुरू होगी, तो हमने तुरंत लंच लिया। फिर अपने रूम की तरफ बढ़े, जो लखनऊ के भूल-भुलइय्या से कम नहीं था।

कमरे में सामान पहले ही पहुँच कर इंतजार कर रहा था। तरो-

ताजा होकर शाम पाँच बजे तक वापस रेस्तरां पहुँचे। पहले दो बार ग्रीन टी ली, फिर खाने-पीने के लिए इतने आइटम थे कि खाने वाला थक जाए, लेकिन न आयटम खत्म हुआ और न मन भरा। उधर से फ्री होकर खुली जगह पर पहुँचे, जहाँ से समुद्र का साम्राज्य दूर-दूर तक दिखाई दे रहा था। क्रूज़ का पहला अनुभव अत्यंत रोमांच से भर रहा था। थोड़ी देर में क्रूज़ यात्रा स्टार्ट हुई और हम सब समुद्र की लहरों के ऊपर सवार होकर चलने लगे।

देखते ही देखते सूरज डूब गया और चारों तरफ अंधेरा छा गया। बीच-बीच में अनजाना सा भय आकर थोड़ी देर डराता था, लेकिन वह केवल दिल और दिमाग की थोड़ी देर की अनुभूति थी। डिनर के बाद सो गए।

सुबह समय से उठे। हर फ्लोर पर अलग-अलग एक्टिविटी का इंतजाम था—स्वीमिंग, जकूज़ी, योगा, खेलकूद। हमने जकूज़ी का आनंद लिया और अंताक्षरी खेली। शाम को कल्चरल प्रोग्राम हुआ, जहाँ ओपन फ्लोर पर सभी टूरिस्ट डांस करते थे। उस दौरान पूर्णिमा भी आई। हमारे साहित्यिक ग्रुप द्वारा 'अंतरराष्ट्रीय काव्य समारोह' भी सम्पन्न हुआ।
खाते-पीते, उठते-बैठते तीन दिन कब निकल गए, पता ही नहीं चला। वहाँ से चलने का समय हुआ। शिप से दूसरी बोट आकर हम सब उसमें सवार हुए और करीब 15 मिनट का सफर तय कर मालदीव पहुँचे। वहाँ जनवरी माह में भी बहुत गर्मी थी।

थोड़ी देर आराम करने के बाद शाम को समुद्र के किनारे पहुँचे। चंद्रमा की किरणें जल में उतर रही थीं, जिसे देखकर मैथिली शरण गुप्त की पंक्तियाँ याद आ गईं— "चारू चंद की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल, थल में। स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर तल में।"

समुद्र में उतरते हुए चंद्रमा की अलौकिक किरणों को देखकर मेरी कलम भी अंदर उठते भावों से मिलकर एक सुंदर कविता से मिली। दूसरे दिन भोर में समुद्र के किनारे टहलते हुए, मैंने भी समुद्र देवता से कुछ यादगार चिन्ह माँगे। थोड़ी देर में उन्होंने लौटती हुई लहरों के रूप में मुझे दो पत्थर दिए—एक मानव हस्त आकृति, और दूसरा माँ के गोद में बच्चे को लिए हुए ममत्व भरा आकृति। तो मित्रों, यह थी मालदीव यात्रा का संस्मरण। अगले संस्मरणात्मक विवरण के साथ फिर मुलाकात होगी। तब तक के लिए विदा लेती हूँ।

•••

सुनो न सुचित्रा सेन

कविता:- शहंशाह आलम

सुचित्रा सेन, जिस पहाड़ी एकांत में
मैंने तुम्हारे नाम की कविताएँ लिखी थीं।
उस पहाड़ पर अब चोरी-चोरी मकानात बनवा दिए गए हैं।
क्या पहाड़ को बेचा जा सकता है बंजर भूमि की तरह
अथवा पहाड़ के सहगान को खंडित किया जा सकता है?
ऐसा नहीं किया जा सकता — मेरे सुकुमार सेन।
तुम्हीं ने आलिंगनबद्ध करते हुए मुझसे कहा था
कि किसी पहाड़ को न कभी बेचा जा सकता है
न इसके सहगान को खंडित किया जा सकता है।
लेकिन ऐसा सच में कर दिया गया है, सुचित्रा सेन।
तुमने मुझे जतन से समझाया कि पहाड़ी — प्रेम के भय से —
प्रेम के शत्रुओं ने वहां पर मकानात खड़े करवाए होंगे।
प्रेम पेड़ों को ज़्यादा दिनों तक ज़िंदा रहने में मदद जो करता है,
प्रेम नदी को दूर तक बहते रहने में मदद जो करता है,
प्रेम मृत्यु को हमसे दूर ले जाने में मदद जो करता है,
प्रेम सेमल के फूल को फूलने-फलने में मदद जो करता है।
सुनो न सुचित्रा सेन,
यह समय प्रेम करने का नहीं है —
प्रेम को विस्थापित घोषित करने का है।
सुनो न सुचित्रा सेन,
चलो अब हम पहाड़ पर नहीं,
पानी पर प्रेम की कविताएँ लिखा करेंगे।
पानी पर लिखे गए प्रेम को मिटा पाना
मुश्किल होगा पहाड़ के शत्रुओं के लिए।

•••

अंकित स्मृतियाँ

कविता:- भोला नाथ सिंह

मेरे मानस पटल पर
अंकित हैं कुछ चेहरे
उनकी खट्टी-मीठी, कड़वी यादें
दो-चार पल, दो-चार वर्ष
व्यतीत किया जिनके संग।

नाटे-से, सुगठित तन का स्वामी
उन्नत ललाट, चौड़ी छाती
बिना मूँछ का चेहरा सपाट
नाक पर एक मस्सा
कर्तव्य की प्रतिमूर्ति
स्नेह बरसाते उनके चक्षु
शील और सदाचार थे आदर्श जिनके
निर्भीक बड़े
रात्रि को भी कूद पड़ते लेकर परशु
ठीक परशुराम की तरह
होती जो आहट कोई।
काम, काम और काम
बिना भेद निष्काम
सच ही वे थे शिवराम।
शिव सी दया, स्नेह और
संघारक शक्ति का स्वामी
राम-सा आदर्श आचरणी
नीति का ज्ञाता, पुरुषोत्तम
करता हूँ मैं उन्हें नमन।

एक साहित्यकार मनस्वी
मेरे अग्रज सामान
जिन्होंने दिखाया नया मार्ग
बँधा था किसी प्रकाशन विशेष से
उन्होंने दिखाया विस्तृत आकाश
पहली बार उड़ा मैं खुलकर
उड़ता ही गया, उड़ता ही गया
दूर और दूर, आज तक
जिन से पाया नई दिशा
एक नया संसार
आभारी हूँ मैं उनका
आज भी हूँ कृतज्ञ।

कभी-कभी आती है याद
एक फेरीवाले की
सिर पर उठाए एक बोरी
जिसमें होते थे हल्दी,
धनिया, मिर्चा, गोलकी
कभी-कभी लहसुन भी
खटपटाता उनका तराजू
हल्दी सने उनके बाट
पुकारते थे कहकर धनियावाला
बचपन में हो गया था
अनायास ही स्नेह उनसे
सुनता था उनके परिजनों की बातें
कहानी की तरह
आते थे जब घर से वे लौटकर
कुछ ही दिनों में एक बुरी
झूठी खबर आई
'मर गया बेचारा नंदी'
पर एक दिन अचानक हुए वे प्रकट
हम थे हतप्रभ, अचंभित
कहीं कोई प्रेत तो नहीं?
वे थे बड़े व्यथित
परेशान-से, थके-हारे
आँखें सजल, रोती हुई
बिखरता कारोबार
पैकेटों में बंद मसाले
बिकने लगे हैं अब सर्वत्र
अब उनकी ज़रूरत किसे थी!
लोग तो बस अपनी ज़रूरत भर
पूछते हैं औरों को
कुछ दिनों बाद फिर
गायब हो गया था वह परदेसी
रह गईं उनकी यादें बाकी।

●●●

कहने को सब कह देता

ग़ज़ल:- नवीन कुमार भट्ट नीर

कहने को सब कह देता क्यो दर्द नहीं कह पाया जी
बेकल है मन मासूमों की पीर नहीं सह पाया जी

वे जुल्मीं क़ातिल न जानें किन राहों से गुजर रहे हैं,
करतूतों से पहले क्यों दिल मना नहीं कर पाया जी

उसको कब इंसाफ मिलेगा बेमतलब जो मार गया,
दर - दर मानों भटक रही है आज नहीं रह पाया जी।

बेबस भी लाचार बेचारे, छाया जिनकी छीन चुके
उस पल को जब याद किये,दर्द नहीं भर पाया जी।

●●●

टैरेक्स की कहानी

कहानी:- विनोद रिंगानिया

१

टीवी पर ऐसी खबरें कभी खूब चली थीं कि इस होटल को गिराया जायेगा। कारण, यह ऐसी जमीन पर बना है जो दरअसल एक बड़े तालाब का हिस्सा थी। इसे शिलसांको तालाब कहा जाता है। यानी पत्थर के पुल वाला तालाब। पत्थर के पुल का तालाब किस जमाने में था पता नहीं। हमने तो कभी नहीं देखा। देखने की बात करना बेकार है, क्योंकि हमारे शहर में जितने भी इलाके हैं, उनके नाम जिन चीजों पर पड़े हैं उन्हें क्या हमने कभी देखा है? कमारपट्टी यानी लोहार पट्टी में हमने कभी लोहार देखे हैं क्या? यह इलाका तो इतना भीड़-भाड़ वाला है कि गाड़ी पार्क करना तो दूर, बिना रगड़ खाए आपकी गाड़ी वहाँ से निकल जाए तो गनीमत समझिए। इसी तरह उलुबाड़ी का मतलब होता है, उलु नाम की एक घास का मैदान। हमने न तो ऐसा मैदान देखा और न सुना। टकौ का मतलब एक खास तरह का फल होता है लेकिन टकौबाड़ी में न तो हमने और न हमारे पिताजी ने कभी टकौ उगते देखा।

जो भी हो, जब हमने सुना कि इस होटल को गिराया जायेगा तो हमने इसे टीवी वालों का अति उत्साह समझ लिया था। सनसनी पैदा करने में इन लोगों को ज्यादा ही मजा आता है। इस इलाके में रिहायशी घर गिराये गये। कहते हैं वे भी तालाब की जमीन पर बने थे। जिनके घर गिरे उन्हें सरकार ने मुआवजा देने की घोषणा की। लेकिन यह बहुमंजिला होटल, वो भी एक इतने बड़े कॉरपोरेट घराने का होटल, इसे गिराने की बात टीवी पर चलाने से पहले टीवी वालों को कुछ तो सोचना चाहिए था।

फिर सिर्फ होटल ही थोड़े है यहां। अभी मेरे देखते-देखते यहां एक समुदाय का दोमंजिला सार्वजनिक भवन खड़ा हो गया है। यह तो साफ नजर आता है कि यह सार्वजनिक भवन जलधारा के ठीक बीच में बना है। यह जलधारा में बाधा बना हुआ है यह तो कोई ऐरा-गैरा भी बता देगा। फिर एक मकान है होटल प्रबंधन प्रशिक्षण वालों का। वह केंद्र सरकार का प्रतिष्ठान है। क्या इसे भी तोड़ दिया जायेगा? टीवी वालों ने खबर चलायी थी कि हाँ इसे भी तोड़ दिया जायेगा।

और अभी पिछले साल इसी महीने से इलाके में तोड़-फोड़ शुरू हो गयी। होटल की दीवारों को मशीनों की मदद से तोड़ा जा रहा था। विशेष समुदाय वालों का भवन भी टूट रहा है। होटल प्रबंधन वालों का भवन भी। टीवी वालों का कहना है कि इनलोगों को दूसरे स्थान पर जमीन दे दी जायेगी। इस शहर में एक-एक इंच जमीन के लिए मारामारी है, इन्हें सरकार कहाँ से जमीन देगी? हो सकता है नदी के उस पार दे दे। या फिर राष्ट्रीय राजमार्ग की तरफ दे दे। खैर, हमें क्या लेना-देना है उससे।

जबसे तालाब की फिर से खुदाई करके इसे और गहरा बनाया गया है, आसपास की जमीन को इसमें जोड़कर इसे और बड़ा बनाया गया है, तब से इसमें तरह-तरह के पक्षी आने लग गये हैं। अब कहाँ से आते हैं ये पक्षी यह तो नहीं पता, कोई-कोई कहता है ये पक्षी साइबेरिया से आते हैं। अभी उधर जाने पर थोड़ी रोक-टोक है। क्योंकि काम चल रहा है। पानी को साफ करने की तकनीक अपनाकर शहर की नालियों का पानी इसमें बहाया जाता है। यह पानी बिल्कुल साफ होता है। साफ नहीं होता, तो बत्तख और हंस इसमें रात-दिन तैरते नहीं रहते। कुछ लोगों का कहना है कि इन बत्तखों और हंसों को मांसाहारियों के लोभ से बचाने के लिए ही उधर जाने पर प्रतिबंध लगाया गया है। जो भी कारण हो, हमें क्या लेना-देना है उससे।

हमें तो इस बात से सुकून मिल रहा है कि आजकल तरह-तरह के

पक्षी हमारी छत पर आने लगे हैं। सारे पक्षियों को तो मैं पहचानता नहीं, लेकिन तोते को कौन नहीं पहचानेगा। इनकी तो आवाज भी आजकल पहचानने लगा हूँ। ये तोते छत पर से उड़ते हुए हमारे छह मंजिला मकान के सामने के कदंब पेड़ पर आते रहते हैं। हमारे फ्लैट की खिड़की तालाब की ओर नहीं खुलती, नहीं तो हम खिड़की पर कुछ पौधों वाले गमले रख देते और पक्षियों के लिए बिस्कुट के टुकड़े। फिर पक्षी उन टुकड़ों को खाने के लिए आते रहते। कलकत्ते की एक लेखिका ऐसा ही करती हैं और उन रंग-बिरंगे पक्षियों की तस्वीरें अपने फेसबुक अकाउंट पर लगाती रहती हैं।

२

पुत्र का फोन आया था, उस समय मैं रात को टहलने के लिए निकला था। शायद नौ बजे होंगे। कह रहा था कि चेन्नई एयरपोर्ट पर बैठा है, तीन घंटे बाद फ्लाइट आने वाली है। इस तरह उसके घर पहुँचने में कम-से-कम छह घंटे और लगेंगे। मतलब दूसरा दिन ही निकल आएगा। मैंने कहा – सो मत जाना, जैसे भी हो जगे रहना। यदि फ्लाइट छूट गयी तो बड़ी मुश्किल होगी। एक बार फ्लाइट में चढ़ जाओ तब सोते रहना। घर आया तो देखा कि किनारे पर करीने से किसी के जूते रखे हैं। चाबी से दरवाजा खोलकर मैं अन्दर दाखिल हुआ, तो चौंक गया, बल्कि डर गया। अन्दर किसी के होने की उम्मीद नहीं हो, और आपका किसी से सामना हो जाए, तो आप चौंकेंगे न। और डरेंगे भी। दरअसल पुत्र ने आज फिर सरप्राइज दे दिया। उसे पता रहता है चाबी कहाँ छुपाकर रखते हैं। बस आया और फ्लैट खोलकर अन्दर घुस गया। रास्ते में जब मैं फोन पर बात कर रहा था, तब वह टैक्सी में बैठकर बात कर रहा था। बाहर जूते देखकर मैंने नजरअन्दाज कर दिया था, वो मुझे नहीं करना चाहिए था। दीवाली पर वह हमेशा घर आ जाता है। इसी तरह होली पर। इसी तरह किसी मित्र की शादी पर। यानी बस आने का बहाना चाहिए। अच्छा है।

छत वाली बात इसे अभी बता दूँ या सुबह ही बताऊँ। अभी बताया तो यह छत पर जाने की जिद करेगा। मैंने तो वैसे भी सोच रखा था कि यह सुबह आयेगा और सुबह ही इसे सबकुछ बताऊँगा। यह मुझे सरप्राइज दे सकता है, तो मैं क्यों नहीं दे सकता? मैं भी सरप्राइज दूँगा।...कितने बजे निकले थे घर से?.... अच्छा? तब तो थक चुके होगे, चलो कुछ खा-पी लो, फिर सुबह तुम्हें एक चीज दिखाऊँगा।...खा भी लिया? अच्छा लाउंज में। कोई बात नहीं।... मैं अन्दर अपने कमरे में चला गया, कपड़े बदलने। हाफ पैंट पहनकर वापस बाहर वाले कमरे में आया तो पुत्र का उलाहना तैयार था। पापा अभी छत पर चलो, मुझे देखना है उसे।....नहीं, अभी चलो।.... नहीं मुझे नींद नहीं आ रही। फ्लाइट में अच्छा-खासा सो लिया था। आप नहीं जायेंगे तो मैं अकेला चला जाऊँगा।
अरे रुको, रुको भई, चलता हूँ।

लगता है मेरे अन्दर जाते ही मातृ ने बता दिया है। लेकिन कितना बताया होगा?
क्यों क्या है छत पर, क्या देखना है?
वो सब छोड़ो पापा...ये लो चप्पल, पहनो और चलो।
अरे बताओ तो सही, छत पर क्या है?
आप ही तो कह रहे थे सुबह एक चीज दिखाऊँगा।
हाँ, लेकिन छत पर क्या है?
अरे पापा, मम्मी ने मुझे सुबह ही फोन पर सब बता दिया था। बस अब चलो।
हम दोनों मुश्किल से पन्द्रह मिनट रुके होंगे छत पर। वापस लौटते समय लिफ्ट से ही पुत्र ने सवालों की बारिश शुरू कर दी।
यह आया कैसे यहाँ तक?

बताया न कि मुझे तो परसों शाम को छत पर पड़ा मिला था। पहले मैंने इसे बन्दर समझा। लेकिन पास जाकर देखा, तो कुछ समझ में नहीं आया। सबसे पहले तो मैंने एक काम किया कि मोबाइल पर इसकी कुछ तस्वीरें ले ली। उसके बाद सोचा कि तस्वीरें तुम्हें भेज दूँ, लेकिन तुम तो आने ही वाले थे, इसलिए तुम्हें नहीं भेजा।
यह टब कहाँ से मिला?

टब तो अपने बाथरूम का ही टब है। तुमने ध्यान नहीं दिया लगता है।

तो क्या यह परसों से ही इस दूध की बोतल से दूध पी रहा है? आजकल डाक्टर बच्चों को बोतल से दूध पिलाने के लिए मना करते हैं।
क्यों?
क्योंकि बोतल गन्दी रह जाती है और उससे इन्फेक्शन होने का खतरा रहता है।
मैंने शुरू-शुरू में कटोरी और चम्मच से दूध पिलाने की कोशिश की, लेकिन यह तो मुँह ही नहीं खोल रहा था। फिर डर भी तो लग रहा था। एक बिल्कुल अनजाना जीव।

अनजाना कुछ नहीं है, मैं आज ही इंटरनेट पर सर्च करके निकालता हूँ। जरूर कुछ न कुछ मिल जायेगा।
मुझे नहीं लगता।

अरे, आप नहीं जानते, इंटरनेट पर क्या नहीं मिल जाता।...आज रात मैं सर्च करता हूँ और आप भी अपने लेवल पर सर्च कीजिए। कुछ न कुछ तो मिलेगा ही।

वापस लौटे तो मातृ ने खाना लगा दिया था। हमने तय कर लिया कि अब खाने की टेबल पर इसके बारे में कोई बात नहीं करेंगे। खाना खाते-खाते पुत्र ने पूछा, यहाँ अपार्टमेंट में किस-किस को पता है?

लो, तोड़ दी न प्रतिज्ञा? इसीलिए मैं रात को इसके बारे में कोई बात नहीं चलाना चाहता था।

लेकिन मुझे तो यहाँ आने के पहले से ही पता था। बताओ न, किस-किस को पता चल गया अब तक?

अरे, मैं पागल हूँ क्या जो इसके बारे में लोगों को बताने जाता? मैंने तो तुम्हें भी नहीं बताया। मुझे नहीं लगता किसी को भी अब तक पता चला है। सारे लोग तो दीवाली को लेकर व्यस्त हैं।
हाँ, दीवाली कब है?
परसों है न।
लेकिन कल भी तो छोटी दीवाली है। कल भी तो पटाखे फूटेंगे। कुछ तो फूटेंगे ही।
तब उसका क्या होगा?
किसका?

अरे, उसी छत वाले का? वह तो डर जायेगा बुरी तरह। है कि नहीं? भाई मेरे, हर साल इतने पटाखे फूटते हैं तब ये सारे पक्षी कहाँ जाते हैं, कैसे जीते हैं? वैसे ही वह भी जी लेगा।

आपने कभी सोचा है कि हमारे पटाखों से इनको क्या तकलीफ होती है, ये लोग कहाँ जाते हैं? दीवाली के दिनों में ये लोग कैसे जीते हैं? यदि सोचा ही नहीं, तो कैसे कह सकते हैं कि इस जीव को कोई तकलीफ नहीं होगी। सारे पक्षी कहीं दूर चले जाते होंगे पटाखों की आवाज से दूर। लेकिन यह बेचारा तो नहीं जा सकता। हम दूसरे जीवों पर कितना अत्याचार करते हैं हमें इसका भान तक नहीं है।

मातृ रसोईघर से निकल आयी और पुत्र को डाँटा। आते ही तुम बहस करने लगे। पापा कितने उत्साहित थे तुम्हारे आने को लेकर, लेकिन तुम जरा भी नहीं बदले।
मैं जल्दी से खाना निपटाकर अपने कमरे में चला गया। हो सकता है इंटरनेट पर कुछ मिल ही जाए।
—----

सोचा कि जल्दी-जल्दी अपनी वर्जिश-प्राणायम वगैरह निपटा लूँ क्योंकि पुत्र जब घर पर होता है तो अक्सर इनमें नागा हो जाता है। लेकिन जहाँ बाघ वहीं रात। आठ भी नहीं बजे थे, और पुत्र कमरे में दाखिल होता है।
पापा, एक गड़बड़ हो गयी न!

ऊपर गया था उसे देखने, लेकिन वहाँ तो गन्ध के मारे रहा ही नहीं जाता?

जैसे-तैसे पास गया, तो देखा कि वह अपने अपनी ही पॉटी में लिथड़ा हुआ है। अब क्या किया जाये?

करना क्या था। मैं पुत्र के साथ सीधे ऊपर गया छत पर देखने के लिए कि क्या किया जा सकता है। मुझे गन्ध-वन्ध थोड़ी कम आती है इसलिए उसके पास तक चला गया। वह धीरे-धीरे सिसक रहा था। यह सब इस टब के कारण हुआ है। टब नहीं होता तो यह अपने स्थान से सरक जाता और इस तरह गू-मूत में लिथड़कर नहीं रहना पड़ता।

'यह तो कुछ नहीं है, चलो इसे नीचे फ्लैट में ले चलते हैं। वहाँ इसे नहला देंगे, तो सब ठीक हो जायेगा। इसमें घबराने की क्या बात है?...चलो-चलो पकड़ो एक तरफ से,' मैंने टब को एक तरफ से पकड़ते हुए पुत्र को उकसाया। कहीं उसका मन न बदल जाए, कहीं गन्ध की तरफ उसका ध्यान नहीं चला जाए, इसलिए मैं

हड़बड़ कर रहा था। मैं और पुत्र टब को पकड़कर लिफ्ट से नीचे फ्लैट में ले आये। हमने एक मूर्खता की कि उसे कपड़े से नहीं ढका। लाते समय रास्ते में कोई मिल जाता और पूछता कि यह क्या है, तो हम क्या जवाब देते? वैसे भी इस बात पर सोचना है। इसे गोपनीय रखने की बात पर।
कल दीवाली है और हम मातृ का कोई काम हल्का करने की बजाय यह टब घर में ला रहे हैं। हम पिता-पुत्र दोनों के ही कान तैयार थे उलाहना सुनने के लिए। लेकिन मातृ ने टब में झाँककर देखा और कहा – अरे यह तो पूरी तरह लिथड़ गया है, सीधे बाथरूम में ले जाइये। मैं आ रही हूँ।
—----

वैसे भी दीवाली में मेरी कोई खास भूमिका नहीं होती, न ही करने को कोई काम होता है। लेकिन इस बार तो दीवाली हम तीनों के लिए बड़े अजीब तरीके से आयी और गयी। मातृ जैसे ही उसे नहला-धुलाकर, एक कपड़े से लपेटकर कमरे में लाई, उसने फिर से टट्टी कर दी। दरअसल उसे पतले दस्त हो गये थे। कुछ घंटों के लिए तो वह बड़ी विकट स्थिति हो गयी थी। मैं कह रहा था, फार्मेसी वाले से पूछकर पतले दस्त की कोई गोली ला देता हूँ। लेकिन पुत्र कह रहा था कि आप इसे पहले से आदमी मानकर चल रहे हैं। यह आदमी तो है नहीं कि इसे आदमियों की दवा दी जाये। मेरे विचार से किसी वेट से पूछकर कोई दवा देनी चाहिए। कहेंगे कि हमारे पालतू बन्दर को दस्त लग रहे हैं। लेकिन न तो हम फार्मेसी में गये और न वेट के पास। मातृ ने पुत्र से कहा कि अरे तुमलोगों के पतले दस्त मैंने बहुत ठीक किये हैं। थोड़ी देर शान्त रहो, सब ठीक हो जायेगा। उसने वही नुस्खा आजमाया जो पुत्र को कभी पतले दस्त लगने पर आजमाया करती थी। जायफल को घिसकर उसके पानी को चटा दिया। ऐसा उसने घंटे भर में दो-तीन बार किया और साथ ही कच्चे केले को उबालकर कुचलकर खिला दिया। और बस दस्त बन्द हो गये। दरअसल मैं इसलिए अधिक घबरा रहा था कि स्थिति ज्यादा बिगड़ गयी तो हम इसे लेकर न तो डॉक्टर के पास जा पायेंगे और न ही वेट के पास।

३
पुत्र अपने स्थान को लौट गया, जीव को लेकर नाना हिदायतें देकर। हिदायतों में खास बताने लायक यह है कि उसने इसका एक नाम रख दिया टेरेक्स। कहा कि एक नाम होना जरूरी है ताकि फोन पर जब हम बात करें तो यह नहीं कहना पड़े कि उसके क्या हाल है, आप पूछेंगे किसके, मैं कहूँगा वही हमारा जीव। नहीं, हमें इसका एक नाम रखना है और नाम होगा टेरेक्स। क्योंकि यह हमारे टेरस पर मिला है। उसके जाने से पहले हम दोनों ने टेरेक्स के माता-पिता की खोज में हमारे आठियाबाड़ी शहर के कम चक्कर नहीं लगाये। इस बीच मैंने घर पर बच्चों को दी जाने वाली कई तरह की दवाएँ रख लीं ताकि रात-विरात काम आये। जैसे पैरासिटैमॉल के ड्रॉप्स, दस्त की दवा, यहाँ तक कि टेरेक्स को एक दिन पेट के कीड़े मारने वाली दवा भी पिला दी। मैं वे दवाएँ याद करता जो पुत्र को दिया करता था जब वह बिल्कुल छोटा था। पुत्र को बचपन में वैसे कोई खास बीमारी हुई नहीं। मुझे अचानक ध्यान आया कि कोई डॉक्टर भी हाथ में होना चाहिए जिसे जरूरत होने पर दवा के बारे में पूछा जा सके। पुत्र दो-चार दिनों में चला जायेगा इसी विचार से मेरी चिन्ताएँ बढ़ रही थीं। और मातृ? टेरेक्स के कारण उसका काम कई गुना बढ़ गया था, लेकिन क्या

पता टेरेक्स के प्रति उसके मन में कैसे इतना प्यार उमड़ आया कि उसने अब तक तो उसे लेकर कोई शिकायत नहीं की।
तो मैंने पुत्र से पूछा, क्या नाम था उस लड़के का जिसे एमबीबीएस में दाखिला मिल गया था?...जिसका पिता रेलवे में काम करता था? पुत्र ने उससे सम्पर्क बनाये रखा था, मुझे भी उसका नाम याद आ गया...शुभज्योति...हमलोग उसका उच्चारण सुभोज्योति करते थे। दूसरे ही दिन हम दोनों गये उससे मिलने। टूटे गढ़ की पहाड़ी पर उसका हॉस्टल था...हाँ, उसके कॉलेज के पास ही। हॉस्टल थोड़ा नीचे था, कॉलेज बिल्कुल चोटी पर। पुत्र ने फोन पर लिये उसके रूम नम्बर के अनुसार सही रूम के दरवाजे पर दस्तक दी। लेकिन कई बार दस्तक देने के बाद भी कोई जवाब नहीं आया, तो फिर से उसका मोबाइल मिलाया। मोबाइल बन्द आ रहा था। लगता है क्लास-वलास में होगा या फिर ओटी-वोटी में। पुत्र ने पास के कमरे के दरवाजे पर दस्तक दी, तो १५-२० सेकेंड में

अन्दर से उनींदे-से एक लड़के ने दरवाजा खोला। वह कोई पहाड़ी लग रहा था। और नींद से जगा दिये जाने के कारण नाराज था। जाहिर था कि उसे सुभोज्योति के बारे में कुछ नहीं पता था। टूटे गढ़ की पहाड़ी से लौटते समय मुझे निराशा और आशंका ने घेर लिया होगा, तभी तो मैंने पूछा था कि इस आफत को कहीं छोड़ आयें क्या? लेकिन पुत्र उसे आफत कहने के कारण नाराज हो गया। उसकी नाराजगी नाक पर ही रखी रहती है। लेकिन उसने मुझे भरोसा भी दिलाया कि टेरेक्स को छोड़ आने के बारे में सोचने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। आप इसे पालिये, यह एक ऐतिहासिक काम होगा, दुनिया में एक अनोखा काम होगा, ज्ञान की दुनिया में एक बहुत बड़ा योगदान होगा। अंग्रेज जब किसी नये स्थान पर जाते थे तो उनके साथ बॉटनिस्ट और जूलॉजिस्ट भी जाते थे। कि नये स्थान पर मिलने वाले नये पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के बारे में जानकारी इकट्ठा कर विज्ञान को भी आगे बढ़ाया जाये । मैं अगली बार आता हूँ, तो इसमें दिमाग लगाता हूँ... किसी जीव वैज्ञानिक को भी साथ मिला लेंगे...मुझे लगता है जीव की यह एक नयी प्रजाति है...इसकी खोज के साथ आपका नाम जुड़ जायेगा...वैज्ञानिक इसका जो नाम रखेंगे हो सकता है उस नाम में आपका नाम भी जुड़ जाये...जैसे टेरेक्स जगजीत या टेरेक्स जे.। पुत्र की बातों से मन को दिलासा मिली। टेरेक्स को कहीं छोड़ आना हो तो वह चुटकियों का काम है। चुनौती तो उसे रखने, बड़ा करने और उसके बारे में दुनिया भर को बताने में है। पुत्र ने कहा कि सुभोज्योति को तो आप जानते ही हैं, मैं फोन पर आपकी उससे बात करा दूँगा। उसके बाद आप उसे कुछ भी पूछना हो तो फोन पर पूछ सकते हैं। कोई बात उसे खुद पता नहीं होगी तो वह अपने सीनियर्स से पूछकर बता देगा।

४

टेरेक्स की बीमारियों को लेकर मेरी आशंकाएँ निर्मूल थीं। यदि कहा जाये कि साल भर में वह बीमार पड़ा ही नहीं तो गलत नहीं होगा। बस एक-दो बार मुझे लगा कि उसे हल्का बुखार हुआ है, मैं घबरा गया था, रात को उठ-उठकर देखता कि बुखार उतरा या नहीं, लेकिन पैरासिटामॉल की चन्द बूँदों ने अपना कमाल दिखाया और दोनों बार बुखार एक दिन-एक रात से अधिक नहीं रुका। बोतल से दूध पिलाने को लेकर हम डर गये थे, इसलिए कटोरी और चम्मच से ही दूध पिलाया। यह सिलसिला ज्यादा दिन नहीं चला। करीब एक महीने बाद ही सीधे उसके मुँह से कटोरी लगा देते और वह दूध गटागट पी जाता। एक बात पर गौर किया कि उसकी बढ़ोतरी एक आम मानव बच्चे से काफी तेज हो रही थी। इस बीच मैंने इंटरनेट पर विभिन्न पशु-पक्षियों के बारे अध्ययन किया, विशेषकर इस बात का कि किस पशु या पक्षी की कुल उम्र कितनी होती है और उनके बच्चों को पूर्ण वयस्क बनने में कितना समय लगता है।

टेरेक्स की पीठ पर उगे डैने भी बड़े हो रहे थे। एक महीने में ही उनका आकार इतना बड़ा हो गया कि जब वह उन्हें खोलता तो उसके सिर के ऊपर तक चले जाते। बीच-बीच में वह डैनों को फड़फड़ाता, इससे डैनों से निकले पंखों के टुकड़े कमरे में उड़ने लगते। हमें कमरे में दिन में दो बार सफाई करनी पड़ती। मैं और मातृ यह काम खुशी-खुशी कर लेते। मैं बच्चों को पॉटी कराने वाला प्लास्टिक का एक स्टैंड भी ले आया। मैंने गौर किया कि टेरेक्स की पॉटी में गन्ध नहीं होती, वह पक्षियों की तरह बींट करता था, स्तनपायी जीवों की तरह मल नहीं त्यागता था। इससे मुझे सफाई करने में दिक्कत नहीं होती थी। लेकिन यह सवाल मेरे मन में हमेशा घूमता रहता था कि आखिर यह मानव है, कोई दूसरा स्तनपायी जानवर है या कोई पक्षी है? मैंने चमगादड़ों के बारे में थोड़ा अध्ययन किया।

हमारे यहाँ कचहरी की तरफ ऊँचे-ऊँचे बहुत पुराने शिरीष के पेड़ हैं। दिन के समय इन शिरीष वृक्षों पर चमगादड़ लटके रहते हैं। मैंने उधर के चक्कर लगाये। मैं चमगादड़ों की विष्ठा को देखना चाहता था। जानना चाहता था कि वे बींट करते हैं या मलत्याग। लेकिन इतनी व्यस्त सड़क पर चमगादड़ की विष्ठा देख पाना सम्भव नहीं था।

जो भी हो, टेरेक्स स्तनपायी था इसमें कोई शक नहीं था। क्योंकि तभी तो दूध पीकर उसका शरीर अच्छा बढ़ रहा था। पक्षी होता

तो वह कीड़े माँगता। हम कीड़े कहाँ से लाते? हो सकता है हमें कॉकरोच पकड़कर देने पड़ते। इस बात के ख्याल ने ही मन में जुगुप्सा जगा दी। दो ही महीने बाद हमने उसे अनाज खिलाना शुरू कर दिया। शुरुआत सूजी के हलवे से की। वैसे ही दलिया, दाल का पानी, पतली दाल से होते हुए दाल में चूरी हुई रोटी तक आ गये। टेरेक्स हर चीज को ललक से खाता। बस कभी-कभी मातृ उत्साह में आकर उसे ज्यादा खिला देती, तो वह हल्की-सी उल्टी कर देता।

एक दिन मैं बाहर से आया और फ्लैट में दाखिल हुआ तो देखा कि पड़ोस के दो बच्चे बाहर निकल रहे हैं। हम तीसरे माले पर रहते हैं और ये लोग चौथे माले पर। इनकी उम्र यही कोई छह-सात साल होगी। पढ़ाई में अत्यधिक व्यस्त रहते हैं। मातृ ने बच्चों के आने का जो कारण बताया वह चिन्ता में डालने वाला था। एक बार फिर मन में आया कि हाय किस आफत को मोल ले लिया है मैंने! दरअसल अपना टेरेक्स आजकल सुबह उठते ही अजीब-सी आवाजें निकालता है। ऐसा वह दो-तीन मिनट तक करता है, और उसके बाद दिन में भी वह कभी-कभार वैसी आवाज निकालता है लेकिन बहुत कम। दिन भऱ लगभग चुप ही रहता है। आजकल सुबह उसकी आवाज से ही मेरी नींद टूटती है। हमने टेरेक्स को हमारी बोली सिखाने की कोशिश शुरू कर दी है और हो सकता है जल्दी ही वह हमारी बोली सीख जायेगा। मानव शिशु यदि बहुत ही जल्दी बोलना सीख ले तो वह छह से आठ महीने में सीख सकता है। देखना है अपने टेरेक्स महोदय इस मामले में अपनी कैसी प्रतिभा दिखलाते हैं।

५

धीरे-धीरे अपार्टमेंट के बच्चों में हमारे टेरेक्स के बारे में खबर फैल गयी। अमूमन टेरेक्स के कमरे में दो-तीन बच्चे आये हुए रहते थे। ये सिर्फ हमारे अपार्टमेंट के ही बच्चे नहीं होते थे। आजकल इन बच्चों के स्कूल में पढ़ने वाले सहपाठी ज्यादा आने लगे हैं। टेरेक्स का चेहरा-मोहरा बड़ा सुन्दर खिल आया था। तीन महीनों में ही उसका शरीर काफी बढ़ गया था। डैनों को छोड़ दें तो उसके शरीर पर कहीं रोयें या पंख नहीं थे। उसकी त्वचा मानवों की तरह साफ-सुथरी थी। शुरुआत में वह रोता था। उसके रोने का तरीका भी अजीब था। मुझे तो आज भी ठीक से पता नहीं चल पाता जब वह रोता है, लेकिन मातृ को तुरन्त आभास हो जाता है और वह रसोईघर का काम अधूरा छोड़कर उसके कमरे की ओर लपक लेती है। टेरेक्स ने भी मातृ को अपनी माँ के रूप में स्वीकार कर लिया था। इसलिए उसके जाते ही वह चुप हो जाता। हमने उसे अमरूद, सेव आदि फल कुचलकर देने शुरू कर दिये। गनीमत थी कि वह लगभग हर चीज खा लेता था और उसकी खुराक बहुत ही कम थी। मैंने इंटरनेट पर खोज की कि विभिन्न पक्षियों की खुराक कितनी होती है। लेकिन फिर मैं अपने आपको झिड़कता, मैं क्यों बार-बार पक्षियों का अध्ययन करने लग जाता हूँ। क्या अपना टेरेक्स पक्षी है? यदि पंख हटा दिये जायें तो इसमें और दूसरे बच्चों में क्या फर्क रह जायेगा? मेरे अपने ही शब्द 'हटा दिये जायें' से मैं चौंक उठा। क्या शल्य चिकित्सा से इसके पंख निकाल देना सम्भव है? तब यह एक सामान्य मानव बन जायेगा। क्या सचमुच?
चार महीना होते-होते मैं और मातृ उसे बोलना सिखाने लगे। देखा कि वह एक शब्द का उच्चारण करना सीख रहा है। बिल्कुल चुप रहता और अचानक बोल पड़ता – टेरेस या थेरस या ऐसा ही कुछ। वह टेरेक्स बोलने की कोशिश कर रहा था। हम दोनों और उसे देखने आने वाले बच्चे उसे टेरेक्स टेरेक्स कहकर पुकारते। इसलिए उसके दिमाग ने यह शब्द सीख लिया और वह जब मर्जी होती जोरों से टेरेक्स की आवाज निकालता। इससे हम दोनों उत्साहित हुए। मैंने उसे मातृ कहना सिखाने के लिए जी-तोड़ मेहनत की। लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। फिर मैंने सोचा कि शायद यह शब्द किसी मानव शिशु के लिए भी कठिन होगा, इसलिए मैंने मा-मा कहना सिखाने की कोशिश की। लेकिन टेरेक्स महोदय कभी-कभी मुँह खोलते और हमें निराश करते हुए टेरेक्स शब्द की टेर लगाते। जब हम उसके कमरे से बाहर निकलते तो उसे टा-टा, बाय-बाय कहते। सोचते कि शायद इस तरह ये शब्द सीख जायेगा।

धीरे-धीरे टेरेक्स पूरे फ्लैट में घूमने लगा। हमने उसके पैरों में घुँघरू बाँध दिये। इससे हमें पता रहता कि वह किधर घूम रहा है। लेकिन हम अब भी फ्लैट का मुख्य दरवाजा बन्द रखते ताकि वह गलती से भी फ्लैट के बाहर न निकल जाये। उसके सारे फ्लैट में घूमने के लाभ और नुकसान दोनों थे। पहले नुकसान -- अब तक उसे देखने बच्चे ही आते थे और बड़ों ने शायद बच्चों की बातों पर यकीन नहीं किया होगा, इसलिए कोई भी बड़ा अभी तक उसे देखने या उसके बारे में पूछने आया नहीं था। कोई अचानक आ जाये और उसे टेरेक्स बैठक में बैठा मिल जाये, तो हो सकता है कोई लफड़ा खड़ा हो जाये। उसके सारे घर में घूमने के कारण उसके झरने वाले पंख हर जगह फैल जाते और उन्हें साफ करने में बहुत परेशानी होती। हमें इस बात का ख्याल रखना पड़ता था कि काम करने वाली महरी जब आये, तब टेरेक्स अपने कमरे में रहे और बाहर से ताला जड़ा रहे। अब तक हमने यही व्यवस्था कर रखी थी। और अब लाभ – टेरेक्स आखिर एक मासूम बच्चा है। बिल्कुल नासमझ था तब की बात अलग थी। लेकिन अब इसे एक ही कमरे में कैद रखने में हमें बुरा लग रहा था। वैसे भी वह अपने पंखों का

इस्तेमाल तो अब तक कर ही नहीं पाया था। कभी-कभी मन में यह ख्याल आता कि क्या इस्तेमाल न होने के कारण इसके पंख सूख जायेंगे? जैसे चलना-फिरना नहीं कर पाने वाले किसी-किसी बच्चे की टांगें सूख जाती हैं।

६

एक दिन बेताल हमारे घर आया। बेताल रिश्ते में मेरे एक भाई का नाम है। वह एक अजीब इंसान है। नाम तो अजीब है ही। मैंने कितनी बार कहा कि नाम बदल लो। यह भूत-पिशाच जैसा नाम रखोगे, तो कोई भी काम कभी सफल नहीं हो सकता। लेकिन वह कहता पिताजी का दिया हुआ नाम है, इस नाम में क्या खराबी है। कोढ़ में खाज की तरह उसने थोड़ा-बहुत साहित्य का भी अध्ययन कर रखा है। कहता है राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक रत्न का नाम था बेताल भट्ट। उसी ने तो बेताल पच्चीसी लिखी थी। लिखी होगी, लेकिन तुम्हें जमाने के साथ चलना होगा। यह नाम रखकर तुम किसी भी काम में सफल नहीं सकते, मैं कहता। वह सफल हुआ भी नहीं। एक बार मुझे श्मशान के अहाते में मिल गया था। उस स्थान को हमलोग भूतनाथ कहते हैं। पूछा, यहाँ क्या रहे हो?...किसी को बुलाया है मिलने के लिए, उसने कहा।...यहाँ श्मशान में? मैंने बस इतना ही कहा और आगे उधर निकल लिया जहाँ हमारा शव आ गया था।

यह तब की बात है जब टेरेक्स को हमारे घर पर एक साल हो गया था। लेकिन उसका शरीर किसी दो साल के बच्चे जितना विकसित हो गया था। डैने पूरे बढ़ आये थे। हम उसके लिए कुछ ढीले-ढाले कुर्ते ले आये थे और उसके डैनों को अन्दर रस्सी से अच्छी तरह बाँधकर उस पर कुर्ता पहना देते थे। बहुत हुआ तो कोई यही समझेगा कि इसका कूबड़ निकला हुआ है। टेरेक्स सभी कमरों में फुदकता फिरता और उसके पाँव से बँधे घुँघरू छम-छम बजते रहते। बेताल जब बैठा था तब भी टेरेक्स बैठक में आया और बेताल की ओर बस ताककर आगे बालकनी की ओर निकल गया। बालकनी जालियों से घिरी है, उसमें कोई डर जैसी बात नहीं है। टेरेक्स ने बेताल में कौतूहल जगाया होगा, तभी वह उसके पीछे-पीछे बालकनी की ओर चला गया। जब तक मातृ चाय बनाकर लायी और मैं शेविंग को निपटाकर बैठक में आया, दोनों में अच्छी-खासी मित्रता हो चुकी थी। बेताल मुझे अपनी आर्थिक कठिनाइयों के बारे में बताने लगा। कहा कि पत्नी इन दिनों घर पर ही कुछ करती है। वह मुझसे कोई आइडिया माँग रहा था। तभी दूसरे कमरे से टेरेक्स के घुँघरुओं की आवाज आयी। इस पर बेताल ने आँखों को रहस्यमयी बनाकर पूछा, यह क्या कौतुक है भैया? मैं बात को टालने की कोशिश करता लेकिन वह टेरेक्स की जन्मकुंडली टटोल चुका था। तो मैंने भी उसे सबकुछ सही-सही बताना ही ठीक समझा। वैसे भी बेताल नुकसान पहुँचाने वाला जीव नहीं है। बेताल के रहते ही तीन बच्चे अन्दर दाखिल हुए और पूछा, अंकल टेरेक्स कहाँ है? मैंने एक तरफ इशारा कर दिया। रोज इन बच्चों की भीड़ बढ़ती ही जा रही है। कभी-कभी सोचता हूँ कैसी परेशानी मोल ले ली है मैंने? तुम क्या सोचते हो, इससे मुझे कोई प्रॉब्लम भी हो सकती है क्या?

कैसी प्रॉब्लम?

यही आजकल जैसे हिरन आदि वन के जीवों को नहीं पाल सकते। हिरन की बात अलग है।...लेकिन इस जीव के बारे में तो कानून की पुस्तकों में भी कुछ नहीं लिखा होगा। जब कुछ नहीं लिखा तो हम कैसे मान लें कि यह दुर्लभ प्राणी है?

बेताल ने सोफा पर पड़े एक पंख को उठा लिया और उसे ध्यान से देखने लगा। टेरेक्स जहाँ भी बैठता था उसके डैनों से एक दो पंख झड़ ही जाते थे। टेरेक्स के पंखों का रंग इन दिनों चमकीला सुनहरा होता जा रहा था। जब वह धूप में बैठता तो वे और भी चमकते।

आपने गौर किया भैया, ये पंख कितने चमकीले हैं? और इनकी मोटाई भी मुझे थोड़ी अधिक लग रही है। बेताल अंगूठे और तर्जनी के बीच पंख को मसलते हुए बोला। उसने फूँक मारकर पंख को उड़ा देना चाहा, लेकिन वह उड़ा नहीं, वहीं गिर गया। शायद भारी होने की वजह से। क्या ये पंख शुरू से ही इतने मोटे हैं?

तुम्हारे आज कहने के बाद मैंने गौर किया है। ये पहले की अपेक्षा मुझे थोड़े मोटे लग रहे हैं। रुको मातृ से पूछता हूँ उसे क्या लगता है।

उस दिन बेताल मुझसे पूछकर एक पंख अपने साथ ले गया, अपने बटुए में अच्छी तरह सहेजकर। दो दिन बाद मैं सुबह-सुबह शेविंग कर रहा था उसी समय उसका फोन आया। भैया, कल आपको इतना फोन लगाया लेकिन लगा ही नहीं। एक सिरियस बात आपको बतानी है, आज आप घर पर ही हैं न? मैंने लाख कहा कि क्या बात है फोन पर ही बता दो, लेकिन उसने नहीं बताया। दस बजते न बजते वह आ धमका। बड़ा खुश था, यह उसके कॉलिंग बेल बजाने के तरीके से लेकर मातृ से चाय बनाने के लिए कहने के तरीके तक से जाहिर हो रहा था।

आप जानते ही हैं भैया, रामरतन सुनार मेरा दोस्त है। कल गपशप करने उसके पास चला गया था। वहाँ किसी काम से मैंने बटुआ निकाला तो उसने उसमें वो पंख देख लिया। उसे पंख में कुछ खास लगा होगा इसलिए उसने वह मेरे हाथ से छीन लिया। और नाना

सवाल पूछने लगा, कि यह कहाँ से मिला, वगैरह। मैंने पूछा बात क्या है यह तो बताओ? तब उसने पंख को कसौटी पर घिसकर देखा और फुसफुसाकर कहा कि यह असली सोना है, बिल्कुल २४ कैरेट। मुझे फिर भी यकीन नहीं हुआ। मैंने उसे परखने के लिए कहा कि सोना है, तो तुम्हीं इसे खरीद लो। रामरतन तुरन्त राजी हो गया। उसने पंख को तौला, वह कोई एक सौ मिलीग्राम का रहा होगा। उसने कहा कि बाजार में तुझे इसके एक हजार भी मिल जायेंगे लेकिन फिर वे लोग तुझसे नाना सवाल पूछेंगे। मैं तुझे इसके पाँच सौ रुपये देता हूँ। मैंने तुरन्त उससे पाँच सौ रुपये ले लिये और घर चला गया। रुपये तो मैं अभी नहीं लाया, वह मैं आपको बाद में दे दूँगा।

कोई बात नहीं वो तुम रख लो। लेकिन एक बात याद रखना टेरेक्स और इसके सुनहरे पंखों के बारे में किसी को चूँ शब्द भी पता नहीं लगना चाहिए।

वो आप निश्चिन्त रहिये भैया। और आप चाहेंगे तो मैं ही पंखों को रामरतन को बेच आया करूँगा। आप कहाँ घूमते फिरेंगे।
बेताल को मैंने काम का बहाना बनाकर जल्दी ही रफा किया और फ्लैट का दरवाजा बन्द कर लिया। मुझे आगे की योजना पर विचार करना था।

७

मैंने उस दिन के बाद बेताल को और पंख नहीं दिये। सप्ताह भर बाद मैं ही तीन-चार पंख लेकर एक सुनार के पास गया, और मेरे सामने ही उनका वजन करवाया। वे करीब डेढ़ ग्राम हो रहे थे। सुनार मुझे आठ हजार दे रहा था। लेकिन मैं सोने के ताजा भाव देखकर ही गया था। मैं पन्द्रह पर अड़ा रहा, तब वह दस हजार देने को राजी हो गया। उस दिन के बाद से मैं वापस सुनार के पास नहीं गया। पहले जहाँ हमारे कमरों में टेरेक्स के पंख झड़ने पर कोफ्त होती थी, वहीं अब सोचते कि आज बस इतने ही पंख गिरे? मैं जब भी मौका मिलता उसे गोद में लेकर उसके पंखों को सहलाता ताकि इस दौरान एक दो पंख झड़ जाएं। घर पर आने वाली महरी को हमने कह दिया कि उसे अब से झाड़ू देने की जरूरत नहीं। यह काम मैं और मातृ खुद ही करने लगे। टेरेक्स को देखने वाले बच्चों का आना मैंने बन्द करवा दिया। टेरेक्स का जितना कम प्रचार हो उतना ही अच्छा। हम कोशिश करते कि टेरेक्स बालकनी की तरफ कम से कम जाये, क्योंकि उधर यदि उसका कोई पंख झड़ गया तो वह उड़कर बाहर कहीं गिर सकता है। फिर भी मैं सुबह-सुबह टहलने के बहाने अपने अपार्टमेंट की चौहद में बड़े ध्यान से नीचे देखते हुए चलता। और कभी-कभी मुझे टेरेक्स का सुनहरा पर मिल ही जाता। मैं लोगों की नजरें बचाकर उसे उठाता और पॉकिट में डाल लेता।

चार महीनों में ही मैंने अच्छे-खासे पंख इकट्ठा कर लिये। मैं एक छोटा इलेक्ट्रॉनिक तराजू ले आया। उस पर रखकर यदा-कदा पंखों को तौलता रहता। जब वे दस ग्राम हो जाते, तो मैं उन्हें एक पैकेट में डालकर उन पर तारीख लिख देता। इस तरह चार ही महीनों में ऐसे पाँच पैकेट तैयार हो गये। इंटरनेट पर सोने के भाव देखना मेरा शगल हो गया। ताकतवर देशों की नीतियों के कारण सोने के भाव लगातार ऊपर जा रहे थे। दस ग्राम के एक लाख दस हजार, एक लाख पन्द्रह हजार, एक लाख...। भाव के साथ-साथ मेरा दिल भी बल्लियों उछलता। मैं मन ही मन हिसाब करता कि मेरे पास कितने का सोना हो गया है। फलों के दाम काफी चढ़ गये थे, सेव एक किलो के ढाई सौ रुपये। लेकिन टेरेक्स के लिए हम महँगे से महँगा फल लेकर आते। दलिया, खिचड़ी, पराठा, महंगे से महंगा बिस्कुट – हम देखते कि उसे क्या सबसे अधिक पसन्द है वही चीज उसे खिलाने की कोशिश करते। इस बार दुर्गा पूजा पर मैंने अपने और मातृ के लिए अच्छी-खासी खरीदारी की। अब पेंशन पर निर्भरता के दिन खत्म होने वाले हैं। कई सालों बाद लगा कि देवी दुर्गा हम मानवों के लिए खुशियाँ लेकर आती हैं।

क्या एक ही दिन में सबकुछ खत्म हो सकता है? उस दिन वही हुआ था। पंख जमा करते हुए करीब एक साल हो गया था। मैंने एक सुनार के यहाँ सारे पंखों को गलवाकर उनकी छड़ बनवा ली थी। वह करीब डेढ़ सौ ग्राम की हो गई थी। मैं उस दिन छड़ को सावधानी के साथ लेकर एक पहचान वाले दूसरे सुनार के यहाँ बिक्री करने के इरादे से निकला। लेकिन अभी आधे रास्ते ही पहुँचा हूँगा कि मातृ का घबराहट भरा फोन आया। कहाँ हो?... दरअसल जब मैं घर से निकला था तभी टेरेक्स को पतले दस्त लगने शुरू हो गये थे। मैं उसे दस्त रोकने की एक गोली देकर निकल आया था। सोचा दस्त ही तो है। लेकिन मातृ ने जो बताया वह चिन्ताजनक था। उसका कहना था कि दस्त लगातार लग रहे हैं और वह उल्टी भी कर रहा है। साथ ही जोरों से काँप भी रहा है। मैं जहाँ था वहीं से वापस लौट पड़ा। रास्ते में पड़ने वाली एक दवा की दुकान वाले से पूछकर एक-दो और दवाएँ तथा ओआरएस खरीद लिया। यह भी पूछ लिया कि जरूरत पड़ने पर तुम सेलाइन चढ़ाने की व्यवस्था कर सकते हो न?

प्रिय पाठको, कहानी के अन्त तक बने रहने के लिए धन्यवाद। उस दिन मैं, मातृ और डा. शुभज्योति मिलकर टेरेक्स को बचा नहीं पाये। सबकुछ दो-तीन घंटों में ही खत्म हो गया। मैं और मातृ

दोनों ही इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। दो दिनों तक हमारा शरीर मशीन की तरह हो गया। भूख लगती तो किचन में जाकर कुछ खोजते, लेकिन कुछ बनाया होता तब न खाने के लिए कुछ मिलता। बस बचे हुए फल-वल या भुजिया खाकर सो जाते। दूध वाला दूध देकर चला जाता, उसे गर्म करना भी किसी को याद नहीं रहता। दो दिन बाद जब पुत्र अपने शहर से आया तब जीवन थोड़ा ढर्रे पर आने लगा। पुत्र को आये दो दिन हो गये। उसके साथ सोने के भाव की बात चली तब जाकर मुझे याद आया कि अरे वह सोने छड़ तो पैंट की पॉकिट में ही रह गयी थी। उसे तो मैं भूल ही गया। पुत्र को दिखाना था इसलिए मैं वह छड़ लाने के लिए अपनी कपड़ों की आलमारी की ओर लपका। वहाँ पैंट वैसे ही लटकी हुई थी। टटोलकर देखा छड़ पॉकिट में सही-सलामत थी। मैंने दरअसल उसे अखबार के कागज में लपेटकर एक लिफाफे में डाल दिया था। मैं लिफाफा लेकर पुत्र के पास आया। मातृ भी वहीं थी।
लेकिन यह क्या? मैं पुत्र की ओर और पुत्र मेरी ओर देखने लगा। लिफाफे से सोने की छड़ की जगह सूखे मांस जैसी कोई चीज निकली। हम तीनों नाक सिकोड़कर उस चीज की ओर देखने लगे। ऐसा कैसे हो सकता है?

...मैंने छड़ बनवाने के बाद भी कुछ पंख इकट्ठा किये थे। यही कोई दस-बारह होंगे। मैंने पुत्र से कहा कि वह दराज में से वे पंख ले आये। पुत्र मरियल-सी चाल से वापस लौटा। उसके हाथ में पंख तो थे लेकिन वे सुनहरे नहीं थे। साफ नजर आ रहा था कि वे सोने के नहीं किसी पक्षी के साधारण पंख थे। काले और सफेद। इन पंखों को देखकर मुझे ध्यान आया, उस दिन जब शुभज्योति टेरेक्स को बचाने की कोशिश कर रहा था, तब उसके सुनहरे पंख धीरे-धीरे साधारण काले-सफेद पंखों में बदल रहे थे। कैसे मुझे बीच के दो दिनों में इस बात की याद ही नहीं आयी।

•••

इश्क में सब कुछ जायज है

कहानी:- सुनील चंद्र जैन

तो ये था, पन्हाला का किला। रमेश जी ने सबको देखा। सभी संतुष्ट नज़र आ रहे थे। रमेश जी ने कहा प्लीज पे वन हंड्रेड रुपीज इच पर्सन। इफ यू डोंट माइंड एंड बख्शीश, आई मीन ईनाम...
मेनी ने 200/- रुपए देकर कहा - अंकल आपके साथ किला देखकर मन को बहुत सुकून और जानकारी मिली। वैसे आप ये गाइड का काम कब से कर रहे हैं?

रमेश जी के चेहरे पर हल्की मुस्कान तैर गई।
रमेश जी ने (बात को टालते हुए) कहा- अगर जिंदगी रही तो फिर किसी किले के इतिहास को कुरेदते हुए मिल जाउंगा। शुभ यात्रा।
इतना कह कर रमेश जी चाय की दूकान की ओर बढ़ गए।
दिन के साढ़े बारह बजने वाले थे। काफी थकान हो गई थी, मजाक-मजाक में गाइड बनने से 1000/-रुपये बुरे नहीं थे।
चाय समाप्त हो चुकी थी। उठने का मन नहीं हो रहा था। यह दिन की दूसरी चाय थी। एक चाय और पीने का मन हो गया। इतने में भटकंतियों का एक झुंड आ गया और वह भी चाय पीने लगा। जिनको रमेश जी किला दिखाकर आए थे, वे भी वहीं आकर खड़े होकर चाय पीने लगे। मेनी भी उन किला देखने वालों में शामिल थी। रमेश जी को सामने देखकर प्रश्न कर डाला-

अंकल घर नहीं जाना क्या?
रमेश जी ने फिर मुस्कराए! चुप रहना उचित समझा।
लेकिन मेनी चुप नहीं रही।
मेनी ने कहा-अंकल कभी राजस्थान जाओ देखना वहां पर कितने भव्य किले हैं।
इस बार रमेश जी चुप नहीं रह सके।
रमेश जी- हां मैंने अधिकांश किले देखे हैं।
मेनी ने कहा-अगर फुरसत हो तो आमेर के किले के बारे में बताइए ना?
रमेश जी ने टालते हुए कहा- अभी थका हुआ हूं, फिर कभी बताउंगा। अभी भोजन करने की सोच रहा हूं।
इतना कह कर रमेश जी उठ कर चल दिए।
जो नया युवाओं का झुंड आया था, उसमें से एक लड़की ने मेनी से पूछा कौन हैं, ये अंकल?
मेनी ने कहा-गाइड हैं, बहुत बढ़िया एक्सप्रेस करते हैं। अभी हमको पन्हाला का किला दिखाकर लाए हैं।
जिस लड़की ने पूछा था, उसका नाम अनीता था, लेकिन सब उसे मीता कहते थे।
मीता, दौड़कर रमेश जी को पीछे होकर आवाज देने लगी-

अंकल-अंकल रुको..... रमेश जी ठिठक गए।
मीता ने कोई भूमिका नहीं बनाई और बोली मेरा नाम अनिता है सभी प्यार से मुझे मीता पुकारते हैं। मैं इन लोगों के साथ आई हूं। मुझे और इनमें से किसी को मराठी नहीं आती है। आप मेरे साथ आइए एक दो मिनट आपसे बात करना चाहते हैं।
रमेश जी न चाहते हुए वापस चाय वाले की दूकान की कुर्सी पर बैठ गए।

मीता ने अपने सााथियों से कुछ विचार-विमर्श किया और तय करके कहा- क्या अंकल आप हमें पन्हाला का किला दिखा देंगे? मुझे मालूम है, आप काफी थके हुए हैं, लेकिन हमारी खातिर प्लीज हम आपकी फीस दे देंगे।

मीता देखने में गेंहुआ रंग, बाल कमर तक लहरा रहे थे, नाक नक्श तीखा, लम्बाई करीब साढ़े पांच फुट और वाक पटु इतनी कि चलते आदमी के बाल नोच ले। अपनी वाक पटुता के कारण वह ग्रुप की लीडर बनी हुई थी।

रमेश जी ने काफी सोचा और मीता और उनके साथ वालों के चेहरों के हाअ भाव देखते रहे।

रमेश जी ने कहा-एक शर्त है, मैं पहले खाना खाउंगा उसके बाद आपके साथ चलूंगा। तब तुम पानी की दो-तीन बाटल ले लो। हां एक बोतल मेरे लिए भी रख लेना। मैं बुड्ढा आदमी हूं इसलिए धीरे-धीरे किले पर चढ़ पाउंगा और लौटने में अंधेरा होने की संभावना है।

सभी ने एक स्वर में कहा- ठीक है अंकल आप खाना खाओ तब तक हम अपनी चाय का कोटा पूरा करते हैं। पानी तथा हल्का नाश्ता रख लेते हैं।

रमेश जी कोई पेशेवर गाइड नहीं थे। बल्कि वे स्वयं पर्यटक थे। किले घूमने के शौक ने पचासों किलों का इतिहास पढ़ने पर मजबूर कर दिया था। यही वजह थी कि जब वे कोल्हापुर पन्हाला का किला देखने के लिए निकले तो उसका इतिहास कंठस्थ करके आए थे, जिससे देखने का आनंद दोगुना हो सके। आर्थिक रूप से सम्पन्न, लेकिन आज शौकिया तौर पर गाइड बन गए। उनके परिवार में पत्नी, बेटा, दो बेटियां, नाती-पोते सभी थे। एक अच्छे ऑफिस से रिटायर थे। घूमने का शौक था। पेंशन से घर और घूमने का खर्च आसानी से निकल जाता था। आज मूड ही मूड में गाइड बन गए। बच्चे छोटे हों या बड़े उनके साथ बात करना अच्छा लगता था। इससे मन को असीम शांति मिलती थी, विशेष रूप से उन बच्चों के साथ जिनके मन में कोई लालच या छलकपट न हो। कोई उन्हें मूर्ख न समझे।

इस बार घर वालों ने बड़ी मुश्किल से छोड़ा था। घर में अगले महीने शादी थी, उसमें शामिल होना जरूरी था। लेकिन रमेश जी जब ठान लेते हैं तो उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। इस बार वे खुद जाकर रिजर्वेशन करवाकर आए थे। वैसे ये सारे काम उनका बेटा करता है।

खाना खाने के बाद वे वापस चाय की दूकान पर पहुंच गए। वे सभी बच्चे उनका इंतजार कर रहे थे। मीता तो कुछ ज्यादा चहक रही थी। वह रमेश जी के बारे में बहुत कुछ जानने को उत्सुक थी। रमेश जी उससे बचने की पूरी कोशिश कर रहे थे। शिवाजी के किले हों और उसमें दुर्गमता न हो ऐसा हो नहीं सकता? रमेश जी उम्र के हिसाब से धीरे-धीरे चल रहे थे। एक दो बार उन्होंने रुकने के लिए कहा। जब मुख्य द्वार पर पहुंचे और वहां किले के बारे में धारा प्रवाह 15 मिनट बोले तो सभी सन्न रह गए। इतना सोचा भी नहीं था, इतनी जानकारी मिलेगी। इन पन्द्रह मिनट में रमेश जी तरोताजा हो गए। आगे बढ़े, लेकिन आश्चर्य तब हुआ जब उनहोंने मीता के हाथ में अपना हाथ देखा। उन्होंने छुड़ाने की भरसक कोशिश की लेकिन नाकामयाब रहे।

मीता-अंकल मैं हूं ना! आप मेरे साथ, मेरा हाथ पकड़कर चलिए। रमेश जी शारीरिक रूप से इतने भी कमजोर नहीं थे। मीता ने जो हाथ पकड़ा तो किले हर छोर पर, हर स्थान पर उसने हाथ नहीं छोड़ा। रमेश जी पूरे सफर में असहज ही रहे। मीता ने कई बार उनसे उनके बारे में, उनके अकेलेपन के बारे में, अकेले घूमने के बारे में पूछना चाहा, लेकिन वे हर बार टाल गए। इससे मीता की जिज्ञासा और बढ़ती गई।

आखिरकार किले का सफर पूरा हो गया था। सभी ने रमेश जी को कंट्रीब्यूट करके रुपये दे दिए, लेकिन मीता की उन्हें अलग से और रुपये देने की पेशकश को सभी मान गए। रमेश जी ने साफ कड़े शब्दों में मना कर दिया। सबके अति आग्रह के कारण उन्हें होटल का नाम और कमरा नम्बर बताना पड़ा। कब तक कोल्हापुर में रुकेंगे यह भी बताना पड़ा।

दूसरे दिन रमेश जी 8 बजे सोकर उठे। अभी गुशल करके बैठे ही थे, दरवाजे पर दस्तक हुई।

रमेश जी ने कहा-ठीक है आ जाओ और पहले चाय का बोल देना। उनके सामने मीता खड़ी थी।

रमेश जी अकबका गए। सॉरी बोला और अंदर आने के लिए कहा। वे उठकर बेल बजाने वाले ही थे कि मीता ने उन्हें रोक दिया। मीता ने कहा- मैं चाय और नाश्ते का आर्डर देकर आई हूं। मैं आज आपके साथ यहां पर रंकाला झील, महालक्ष्मी मंदिर और न्यूपेलेस देखना चाहती हूं।

रमेश जी ने पूछा-बाकी सब कहां हैं?
मीता ने कहा- वे सब आज पुणे जा रहे हैं। मेरे साथ कोई साथी नहीं है, मैं आपके साथ ही घूमकर पुणें जाउंगी। तत्काल में सीट बुक करके गुरूग्राम निकल जाउंगी। मैं वहीं जॉब करती हूं।
रमेश जी की हालत पतली थी। उनका एकांत, उनका चिन्तन-मनन और लेखन धरा का धरा रह जाएगा।

रमेश जी ने टालते हुए कहा-मैं यहां के अलावा दो-तीन जगह और जाउंगा। एक दो मंदिर हैं और कुछ पर्यटन स्थल हैं। ऐसा करो कोल्हापुर घूम कर तुम पुणे निकल जाओ। पुणे के लिए बसों की अच्छी सुविधा है।

मीता ने कुछ नहीं कहा-बस हां में सिर हिला दिया।
शाम तक कोल्हापुर के सभी दर्शनीय स्थान घूम चुके थे। मीता ने पुणे जाने से साफ इन्कार कर दिया और रमेश जी के साथ पंढरपुर जाने का तय कर लिया।

मीता ने कहा-मैं कहीं नहीं जाउंगी आपके साथ ही पुणे जाउंगी। पुणे में मुझे सिंहगढ़ का किला देखना है। उसकी कमेंट्री आपको करनी पड़ेगी।

रमेश जी को सफेद बालों पर खतरा मंडराता नजर आने लगा। आखिरकार मजबूरन पंढरपुर होते हुए पुणे जाने का मन बनना पड़ा। रात करीब 10 बजे पंढरपुर की बस से रवाना हुए। रमेश जी का अकेले आराम से बैठने का सपना चूर-चूर हो गया। वे सीट पर सिमटे से बैठे थे। कुछ ही देर में मीता नींद में और रमेश जी विचारों में।

आखिर ये लड़की कौन है? ये मुझसे क्या चाहती है? कहीं किसी फ्रॉड में फंसाना तो नहीं चाहती? पता नहीं किस गिरोह की है? इन्हीं विचारों में झपकी लग गई। अचानक जोरदार ब्रेक लगने से रमेश जी नींद और विचार तंद्रा टूट गईं। मीता और सटकर बांह पकड़कर गहरी नींद में सो रही थी। एक ढाबे पर बस ड्राइवर चाय पीने के लिए उतरा, रमेश जी भी चाय पीना चाह रहे थे लेकिन मीता की पकड़ ढीली पड़ने का नाम नहीं ले रही थी। एक बार मन हुआ इसे बस में यूं ही छोड़कर अपना सामान लेकर उतर जाएं, लेकिन उसके विश्वास को तोड़ना उचित नहीं समझा और वैसे ही जड़वत बैठे रहे।

सुबह के पांच बज रहे थे। पंढ़रपुर के मंदिर के घंट नाद से कर्ण आनंद विभोर हो गए। मीता अब भी सो रही थी। पता नहीं कितने दिन से सोई नहीं थी। एस टी स्टेण्ड आ गया। मीता को आखिरकार उठाना पड़ा।

अरे अंकल आप सोए नहीं? मुझे तो बहुत गहरी नींद आई।
रमेश जी ने अपना सामान उठाया और मीता से चलने के लिए कहा - मीता को साथ लेकर एक होटल में कमरा लिया। रमेश जी जल्दी से जल्दी इस मुसीबत से छुटकारा पाना चाहते थे। नहा-धोकर पंढरपुर की चंद्रभागा नदी का मनोरम दृश्य और नौका विहार करते-करते दोपहर के तीन बज चुके थे। एक मराठी भोजनालय में खाना खाया। सुबह नाश्ते में कांदा (प्याज) पोहा और मिसळपाव खाया था। होटल तक पहुंचते-पहुंचते चार बज चुके थे। सामान लेकर पुणे के लिए रवाना होना था। रात को नींद पूरी न होने रमेश जी को थकावट महसूस हो रही थी। एस टी स्टेण्ड पर चाय पीकर पुणे की बस में बैठ गए। पांच घंटे का सफर था। बस में बैठते ही मीता फिर सो गई।

पुणे पहुंचते-पहुंचते रात के नौ बज चुके थे। बस उतरने के बाद

पहले खाना खाया फिर इम्पीरियल होटल की तरफ कदम बढ़ा दिए। पिछली बार भी रमेश जी इसी होटल में रुके थे। मैनेजर सीट पर नहीं था। लाउंज में पड़ी कुर्सियों पर रमेश जी और मीता दोनों बैठ गए। रात के साढ़े दस बज चुके थे। मैनेजर शकल से पहचान गया।

मैनेजर ने कहा-अंकल ज्यादा देर तो नहीं हुई?
रमेश जी-नहीं बस 15-20 मिनट हुए हैं। बात को आगे बढ़ाते इतन में मीता भी काउंटर पर आकर खड़ी आ गई। रमेश जी ने दो कमरे बुक करने के लिए कहा, लेकिन मीता ने टोक दिया और कहा-मीता-अंकल एक ही कमरा ठीक रहेगा। क्यों बिनावजह अतिरिक्त व्यय किया जाए?

मैनेजर ने मीता की बात का समर्थन किया। रमेश जी की हालत सांप-छछुंदर जैसी थी। मीता को न निगलते बन रहा था, न उगलते। रमेश जी उस घड़ी को कोस रहे थे, जब उन्होंने मजाक-मजाक में गाइड का काम करने के लिए पन्हाला के पर्यटकों को यूं ही कह दिया था। गाईड चाहिए क्या? रमेश जी की आदत थी, रात को सोने से पहले नहाते जरूर थे। वे नहाने चल दिए। जब वे नहाकर बाहर निकले तब तक मीता कपड़े बदल चुकी थी। रमेश जी बिस्तर पर पड़ते ही सो गए। उन्हें पता नहीं चला कब मीता उनके बगल में आकर लेट गई होश तो तब आया जब तूफान और आंधी आकर गुजर गए। आंधी-तूफान के बाद मीता का मेघ आंखों से बरस रहा था। रमेश जी खुद को अपराधी महसूस कर रहे थे। लाइट ऑन करने का काम मीता ने किया। उसके चेहरे पर कोई शिकायत नहीं थी। वह संतोष के साथ मुस्करा रही थी।
मीता ने कहा-क्या अंकल काहे का टेंशन लेने का जो होना था, वह हो गया।

रमेश जी को ऐसा महसूस हो रहा था जैसे उन पर घड़ों पानी पड़ गया हो। मीता की आंखों से नींद गायब थी। रमेश जी प्रश्नवाचक नजरों से मीता को एक टक देखे जा रहे थे।

मीता के आंखों से मेघ फिर बह निकला। रमेश जी ने गले लगा लिया। उसकी हिचकी कुछ कम हुई। वह संयत होकर कहने लगी - अंकल मैं अनीस से बहुत प्यार करती थी। अनीस हमारे ही ऑफिस में काम करता था। दिखने में सुन्दर। गोरा चिट्टा, कसा हुआ बदन और वाक पटु इतना कि किसी को भी अपनी बातों से प्रभावित कर लेता। मैं भी प्रभावित हो गई थी। मैं अनीस से एकदम सच्चे वाला प्यार करने लगी थी। मैं नहीं जानती थी वह कौन से धरम का है? मैं तो उसे बस चाहती थी। मैं उससे शादी करना चाहती थी। लेकिन धीरे-धीरे मुझे मालूम पड़ा वह मुझसे शादी नहीं बल्कि फिजीकल होने में ज्यादा इन्टरेस्टेड है। जब उसकी मंशा का आभास हुआ तो एक दिन बड़े बाबू से मिलकर उसके बारे जाना। बड़े बाबू ने बताया-वह विधर्मी है। बस उस दिन के बाद से मैंने दूरिया बनाना शुरू कर दी। उस ऑफिस को छोड़ दिया, फोन नम्बर बदल लिया। सब कुछ छोड़कर गुरूग्राम में नयी जॉब करने आ गई। वह निढाल होकर एकदम रमेश जी की बाहों में सिमट गई। रमेश जी उसको वैसे रहने दिया। कुछ देर बाद वह रमेश जी के पास उसी अवस्था में गहरी नींद में खर्राटे ले रहे थे। जैसे तूफान के बाद अथाह शांति का आभास होता है।

पुणे के सिंहगढ़ के किले में वह उसी भाव से अंकल-अंकल कहते हुए हाथ पकड़ कर आगे खींचते हुए चल रही थी। उसी के आग्रह पर रमेश जी दो दिन तक पुणे में उसी होटल में रुके रहे। रमेश जी दिल्ली आ गए थे। वे मीता को भूलना चाह रहे थे। अचानक एक दिन वे शाम की चाय पी रहे थे कि मीता ने दरवाजे पर दस्तक दी। पत्नी ने बताया मीता आई है। आकर बड़े चहक कर मिली। पत्नी को आंटी कहते हुए गले से लिपट गई। आंटी आप दाल बाटी बहुत बढ़िया बनाती हो मैं कल शाम को जाउंगी, मुझे दालबाटी खाना है।

मीता देर तक आंटी से बातें करती रही। शाम को पूड़ी सब्जी खाने के बाद बातें करते-करते रात के ग्यारह बज चुके थे। रमेश जी की पत्नी ने व्यंग्यात्मक मुस्कराते हुए मीता से पूछा - क्यों मीता अंकल के साथ सोएगी क्या? बिस्तर लगा हुआ है?
वह जोर से खिलखिलाकर हंस पड़ी?
मीता ने कहा-नहीं आज मैं आपके पास सोउंगी। बहुत सी बातें करनी हैं। रमेश जी ने बीच व्यवधान डालते हुए कहा-मीता, मैंने तेरी आंटी को सब कुछ बता दिया है।

मीता-मैं वो आंटी के बिस्तर लगाने और सोने वाली बात से समझ गई थी। दूसरे दिन मीता दोपहर को चली गई। रमेश जी अपने आपको काफी रिलेक्स महसूस कर रहे थे। उसके बाद मीता महीने में एक दो-बार आती। मीता के आने से रमेश जी को अच्छा लगता। वह घर के सदस्य के रूप में समाहित हो गई थी।
मीता आज आई तो उसके साथ एक लड़का था। उसने बेझिझक घर में घुसते हुए अंकल-अंकल इधर आओ एक सरप्राइज है आपके और आंटी के लिए।

मीता के साथ विनीत नाम का युवक मुस्करा रहा था। हम दोनों पति-पत्नी ड्राइंग रुम में बैठे औपचारिक रूप से बातचीत करने

की सोच रहे थे।मीता आदत के अनुसार शुरू हो गई- मीता-आंटी आपने पूछा नहीं ये कौन है? ये विनीत है। मेरे ही ऑफिस में काम करता है। बड़ा नेक दिल इन्सान है। जानवरों से प्यार करता है शायद इसीलिए मुझसे भी प्यार करने लगा है। हम लोग अगले महीने कोर्टमेरिज करने वाले हैं।

रमेश जी के चेहरे पर हल्के तनाव के भाव उभरे। लेकिन उन्होंने कुछ कहा नहीं। विनीत की जेब में हाथ डालकर उसका आधारकार्ड, पेनकार्ड सब कुछ उलटकर टेबल पर रख दिया। मीता एक बार बोलना शुरू कर दे तो चुप कराना मुश्किल होता है। वह कहने लगी। ये उसी दिन से प्यार करने लगा था, जिस दिन मैंने ज्वाइन किया था। इसको अपनी बात कहने में समय लगा और मुझे इसे परखने में। बस इस खुशखबरी को शेयर करने चली आई। हां अंकल-आंटी कोर्ट मेरिज में मेरी ओर से आप दोनों गवाह होंगे। एक बात और इस विनित को मैंने अपना जीवन खोल कर बता दिया है। पन्हाला किले से लेकर इम्पीरियल होटल तक। इससे मैंने कह दिया देख अब भी तू शादी करना चाहे तो कर नहीं तो अनीस की तरह तू भी मेरी जिन्दगी से निकल। मेरी स्पष्टवादिता पर और अधिक मुग्ध हो गया। अब अंकल आप ही बताइए? सही किया न मैंने?

अनीस ने किया वह सही था?
मैंने जो इम्पीरियल होटल में किया वह सही था?
या इस विनीत ने जो किया वह सही है?
रमेश जी और भी सोच रहे हैं क्या सही है?
रमेश जी की पत्नी ने कहा-बीती को बिसार दे आगे की सुध ले।

•••

मेरा मन ये मुझको रुलाए

ग़ज़ल/गीत:- ओम शिवम उपाध्याय

मेरा मन ये मुझको रुलाए,
कैसे मुझे साजन निंदिया आए.....!!
तुझसे मिलन की आस लगाए,
कैसे मुझे साजन निंदिया आए.....!!
दूर रहे तू दिल घबराए,
कैसे मुझे साजन निंदिया आए.....!!
पल-पल तुझसे हर रंग तुझसे,
सारी सजधज सावन तुझसे....!!
बैर भी तुझसे धड़कन तुझसे,
आस भी तुझसे एहसास भी तुझसे....!!
कैसे मुझे साजन.........!!
जब घबराई तू याद आया,
मैने तुझी को है साथ पाया.....!!
कह न सकी जो तू सुन पाए,
कैसे मुझे साजन निंदिया आए....!!
जीत भी तुझसे हार भी तुझसे,
नैन में आसूं बिरहन गाए.....!!
मेरा मन ये मुझको रुलाए.....
कैसे मुझे साजन......!!

•••

है यह दौर बड़ा खराब

कविता:- अशोक नेहरा

यहाँ किसान मारा जाता है
और खरीददार मालामाल हो जाता है
है यह दौर बड़ा खराब।
यहाँ उधार देने वाला मारा जाता है
और उधार लेने वाला मौज करता है
है यह दौर बड़ा खराब।
यहाँ अभ्यर्थी रात गुजारते सड़को पर धरना देते देते
और उनके ट्यूटर सोते हैं खराटे मारते मारते
है यह दौर बड़ा खराब।
यहाँ भक्त रहते हैं कच्ची बस्तियों में अपने गुरु के आसरे
और उनके गुरु रहते बंग्लो में पैसों के सहारे
है यह दौर बड़ा खराब।
यहाँ मजदूर मरता मार पसीने की
और उनका मालिक चुराता आय सरकार की
है यह दौर बड़ा खराब।

•••

कौन ?

कविता:- निधि व्यास

घोर अंधेरे उदासियों के
इनमें जी बहलाए कौन ?

पल पल मरते रहते हैं हम
अब जीना सिखलाए कौन ?

चुप्पी मेरी जो सुन पाए
ऐसे कान लगाए कौन ?

टूटे, बिखरे, हारे, अधूरे,
अब फिर से हमें बनाए कौन ?

किसे पड़ी है, कैसे हैं हम
प्यार से अब सहलाए कौन ?

ना डूबे ना रहे किनारे
मझधारों से बचाए कौन ?

जीवन का उत्साह नहीं अब
फिर से उसे जगाए कौन ?

सब तो हैं बस स्वार्थ के संगी
सच्चा साथ निभाए कौन ?

यह संसार है कोरा सपना
स्वप्न से हमें जगाए कौन ?

धन दौलत या प्रेम बड़ा है
यह व्यवहार सिखाए कौन ?

कैसे बूझें कठिन पहेली
अपने कौन, पराए कौन ?

किससे बांटे व्यथा हृदय की
इतना हृदय लगाए कौन ?

मन की पीड़ाओं पर आखिर
मरहम अब लगाए कौन ?

अपना आपा भूल चुके हैं
अब खुद से मिलवाए कौन ?

इतने प्रश्न भरे हैं मन में
उत्तर देने आए कौन ?
उत्तर देने आए कौन ?

गरम मतलब तातल

संस्मरण:- विनय कुमार पाठक

बात उन दिनों की है जब मैं पाँच-छह वर्ष का रहा हूंगा। मेरी मातृभाषा मगही है और बिहार के पलामू जिले से संबंधित होने के कारण हिंदी से परिचय होना स्वाभाविक है। मगही वस्तुतः हिंदी की ही उपभाषा या बोली है। यह बात अलग है कि क्षेत्रीय भाषा, या कहें मातृभाषा मगही के प्रभाव से 'मैं' को 'हम' बोलना और अधिकांश शब्दों को पुल्लिंग के रूप में प्रयुक्त करना आदत में शुमार था और कुछ हद तक अभी है; विशेषकर अपने क्षेत्र के लोगों से बातें करते समय।

रांची जिले के सिसई और कुडू में शैशवावस्था बिताने के बाद हम मधेपुरा चले गए थे जो मिथिलांचल में है। वहाँ की भाषा मैथिली और उससे मिलती जुलती अंगिका है। वहाँ जाने का कारण था पिताजी का स्थानांतरण। उन दिनों हमारे घर से मधेपुरा जाने में दो दिन लग जाते थे। एक दिन पटना और फिर दूसरे दिन वहाँ से बरौनी और बेगूसराय होते हुए मधेपुरा। रात में बसें कम ही चलती थी उन दिनों।

कई शब्द ऐसे हैं जो एक भाषा में अलग अर्थ रखते हैं तो दूसरी भाषा में अलग। कभी-कभी तो एक भाषा का शब्द दूसरी भाषा में कुछ ऐसा अर्थ लिए होता है जो प्रयोगनीय नहीं माना जाता; अश्लील तक माना जाता है। किसी भाषा में कई शब्द ऐसे होते हैं दूसरी भाषा के शब्द से काफी मिलते हैं पर उसका अर्थ भिन्न होता है। इसी की एक बानगी देखें।

पिताजी मधेपुरा में कृषि पदाधिकारी थे और आसपास के कृषकों के बीच काफी लोकप्रिय थे। मधेपुरा उत्तरी बिहार में है और खेती बारी काफी अच्छी होती है। पानी की उपलब्धता इतनी है कि बाँस-बोरिंग से ही पानी निकल जाता था। अभी क्या स्थिति है कह नहीं सकता। जब से सुना है कि यूरोप में लू से लोग परेशान हैं और उत्तराखंड और हिमाचल में प्रकृति के कहर से संबंधित खबरें पढ़ी है तब से समझ में आने लगा है कि प्रकृति के साथ जो खिलवाड़ हुआ है, उसका परिणाम कुछ भी हो सकता है। अभी हाँगकाँग को भी गरमी से परेशान बताया जा रहा है। जिन स्थानों में गरमी के मौसम को सुखद माना जाता था वे स्थान गरमी से हलकान हो रहे हैं। ऐसे में आज तिरपन वर्षों के बाद क्या अभी भी मधेपुरा में पानी उतनी ही सहजता से उपलब्ध है कह नहीं सकता।

तो हुआ यूं कि कोई कृषक पिताजी से मिलने आया था। पिताजी के पास अक्सर लोग मिलने आते थे। उनके सरल व्यवहार के कारण खेती से किसी समस्या का समाधान पूछने के लिए। जो व्यक्ति मिलने आया था वह स्थानीय था। जब वह आया दीदी दरवाजे पर ही थी।

"पाठक जी के बासा यहा छै?" उसने पूछा।
उस क्षेत्र में निवास स्थान को बासा कहा जाता है। शायद यह शब्द 'वास' अथवा 'निवास' का अपभ्रंशित रूप है। दीदी उस समय ग्यारह-बारह वर्ष की रही होगी। उसकी समझ में 'बासा' से मिलता जुलता शब्द बाँस ही था। घर खपरैल था तो स्वाभाविक है बाँस का प्रयोग होना ही था। उसे लगा छत पर जिस बाँस को खपडों को बिछाने के लिए प्रयुक्त किया गया है वह उसकी बात कर रहा है। और उसकी नजर में वह बाँस पाठक जी अर्थात पिताजी का तो था नहीं क्योंकि हम किराये के मकान में रहते थे।

'नहीं।' उसने जवाब दिया।
वह आगे बढ़ कर और लोगों से पता करने लगा। छोटे कस्बों में तो

सभी एक दूसरे को जानते हैं। आज मधेपुरा जिला बन चुका है उस समय एक सब-डिवीजन था। दो वर्ग किलोमीटर से ज्यादा में न होगा। किसी से वह पूछे तो उसे हमारे घर का पता बता दिया जाता था। उसने दुबारा आ कर पूछा। इस बार दीदी घबरा गई। उसने अंदर आकार माँ से कहा, "कोई आदमी आया है और बार-बार पूछ रहा है कि बाँस पाठकजी का है।" उसने ऊपर इशारा कर बाँस के फट्टों को दिखाते हुए पूछा।

हमें वहाँ आए हुए कुछ महीने हो चुके थे और माँ बासा का मतलब जानती थी। हँसते हुए उसने बताया कि बाँस नहीं बासा। बासा मतलब घर।

एक घटना मेरे साथ घटी वहाँ। कोई सामान बेचने वाला आया था। घर में सिक्के नहीं थे। एक या दो का नोट था। उन दिनों अधिकाश वस्तुओं के दाम पैसों में ही होते थे। यह जानकर कि खुदरा पैसों को लेकर परेशानी होगी मैंने उससे पूछ लिया, "फूट छकऊ?" यह स्थानीय भाषा के अनुकूल नहीं था। सही शायद 'फूट छौ?' होना चाहिए था। सभी उपस्थित लोग मेरी अज्ञानता पर काफी हँसे। आज इतने वर्षों के बाद भी जब कभी घर में मधेपुरा की बात होती है तो इन दोनों घटनाओं का उल्लेख जरूर होता है और हम काफी आनंदित होते हैं अपनी भाषायी मूर्खता पर।
बंगाल और बिहार पड़ोसी राज्य हैं। स्वाभाविक है एक दूसरे की भाषा के कई बारीकियों को नहीं जानते। बाड़ी का प्रयोग बंगला में घर के लिए होता है जबकि बिहार की स्थानीय भाषाओं मगही, भोजपुरी और मैथिली में बगीचा। एक बार किसी बंगलाभाषी ने रात के वक्त विदाई लेते हुए कहा, 'आमि बाड़ी जाबो' तो मगहीभाषी को आश्चर्य हुआ कि रात के वक्त कौन बगीचा में जाता है।

एक और शब्द है बगला में सासुड़ी जिसका मतलब सास होता है। अर्थात पति अथवा पत्नी की माँ। एक बंगलाभाषी सज्जन अक्सर अपनी सासुड़ी की बीमारी का जिक्र करते थे। हिंदी भाषा में पति अथवा पत्नी के पिता के लिए ससुर शब्द है। उन्हें लगा कि बंगला में सास के स्थान पर ससुरी शब्द का प्रयोग होता है। उन्होने पूछ लिया, 'आपकी ससुरी कैसी हैं?'

'कैसी हैं' बताने के पहले उन्होने स्पष्ट किया ससुरी नहीं सासुड़ी। ससुरी तो गाली होता है। बात सही है हिंदी कि उपबोलियों में ससुरी गाली होता है।

अब एक और अनुभव साझा करूँ। उन दिनों मैं पांकी नामक शाखा में कैशियर के पद पर था। भुगतान काउंटर पर बैठा हुआ था। एक महिला को भुगतान लेना था। उनका निकासी फॉर्म पासिंग ऑफिसर ने पास कर के भेजा। भुगतान अस्सी रुपये का था। महिला ने टोकन दिया तो उनके वाउचर को देख मैंने दस के आठ नोट उन्हें दिए।

उन्होंने नोट हाथ में लेकर पूछा, 'बाबू केतना रुपये हई?'
मैंने बताया, 'अस्सी रुपया।'

उन्होंने मेरी ओर ऐसे देखा मानो कुछ समझी नहीं, मैं फिर ज़ोर से कहा, 'अस्सी रुपया।'

अभी भी उनके चेहरे से प्रश्न वाचक भाव नहीं हटे थे और वे भी काउंटर से नहीं हटी थी। एकाएक मुझे एक घटना याद हो आई। मेरे गाँव में मेरे चाचा जी, जिन्हें हम बुजी कहकर पुकारते थे, के पास एक लड़का पढ़ने आता था। चाचा किसी आगंतुक से बात करने में व्यस्त थे सो मेरे बड़े भाई को कहा उसे पढ़ाने के लिए। पढ़ाने के क्रम में एक शब्द आया, 'गरम'। और बच्चे ने पूछ दिया गरम मतलब। थोड़ी देर सोचने के बाद भैया ने गरम का अर्थ बताया, 'हॉट'।

चाचा भले ही आगंतुक से बातें कर रहे थे पर उनके कान में यह बात पड़ गई कि उनके शिष्य को प्रतिनियुक्त गुरु गरम का मतलब 'हॉट' बता रहे हैं। वे उनके करीब आए और बोले यदि कोई पूछे कि रवि का क्या मतलब होता है तो तुम उसे भानू बताओंगे या सूरज। उसके स्तर पर आकर उसे बताओ। गरम का मतलब होता है 'तातल'। उन्होने बच्चे को गरम शब्द का स्थानीय मगही भाषा का विकल्प बताया।

मेरी समझ में बात आ गई कि माताजी अस्सी का मतलब नहीं समझ पा रही हैं। मैंने उनके स्तर पर आकार उन्हे बताया – 'सौ रुपया में बीस कम'। अब वे समझ गईं। लाठी टेकती हुई काउंटर से हट गईं।

भाषा से संबंधित और भी कई मजेदार किस्से हैं। पर कभी और कहीं और।

अगर तुम न होते

संस्मरण:- डा.अंजु लता सिंह गहलौत प्रियम

निष्कपट व्यवहार, कर्तव्यनिष्ठा, संबंधों का माधुर्य, सहयोग और लगाव ये कुछ बातें ही किसी अपने के प्रति हमें आकर्षित करती रहती हैं। इनमें से कोई ऐसा जरूर होता है, जिससे आप काफी गहराई तक जुड़ जाते हैं। ऐसी ही शख्सियत रहे मेरे "पापा जी", जिनके अनुकरण के बिना मैं अपने सुसंस्कृत जीवन का निर्माण कर ही नहीं सकती थी।

सभी मुख्य भारतीय दिवसों में आज भी 'शिक्षक दिवस' का दिन मेरे लिये सबसे खूबसूरत दिन बन जाता है, क्योंकि इस दिन स्कूल, घर और बाहर सब जगह बच्चों को स्नेह की नजर से देखा जाता है।

मेरे पापा सरकारी महाविद्यालय में व्याख्याता से लेकर प्रिंसिपल के पद पर रहकर बेहद प्रभावशाली और लोकप्रिय व्यक्तित्व रहे। उनका असर भी मुझपर काफी गहरा पड़ा है।

बचपन में मैं बेहद चंचल और मेधावी छात्रा थी। मम्मी की बजाय पापा जी ही मुझे ज्यादा चाहते थे। जब मैं फोन करके अक्सर कहती थी - "मम्मी आ रही हूँ सबसे मिलने।"

वे झट से कहतीं - "करोना फैला है, अभी मत आना।"
पापा की भी आवाज पीछे से सुनाई देती - "अरे, आने दो.. मास्क लगा लेगी। जरा रौनक हो जाएगी।"

खैर.. मुझे सदैव ही घर में सभी का प्यार और विश्वास मिलता रहा है, लेकिन मेरा सबसे अधिक लगाव पापा से ही रहा।

कुछ कारण गिनवाती हूँ:

- शैशव से ही गोरी, चिट्टी, गोल-मटोल, बातूनी सी मैं (मोटो) अक्सर रोटी पर मलाई रखकर पापा की देखरेख में छिपकर खाती।
- लड़कों के संग गुल्ली-डंडा, कंचे और छुप्पम-छुपाई जैसे खेल खेलती।

शाम को लौटती, तो मम्मी मेरे गोल-मटोल सुकोमल गल्लू खींचती, दो स्केल (12" लकड़ी वाला) हथेली पर मारती और हाथ - मुँह धुलवाकर स्टडी के लिए बैठा देती।

चैन वहाँ भी नहीं आता मुझे... पाठ्य पुस्तक के बीच में चंदामामा, चंपक या लोटपोट पढ़ने का मजा लेती रहती।

मम्मी की पक्की चमची बड़ी दीदी मेरी चुगली कर देतीं और फिर मुझे सजा के तौर पर भूखा रखा जाता।

इधर पापा दबे पाँव आते और मेरे हाथों में पारले जी बिस्कुट, संतरे वाली टॉफ़ियों का पैकेट और आम पापड़ थमाकर मेरे माथे को चूम लेते।

जब किशोरी हुई, तो नवीं क्लास में मैंने एक कविता लिखी - "शूल नहीं तुम फूल बनो", जिसकी अंतिम पंक्ति पापा ने ही बनवाई। नवभारत टाइम्स, रायपुर, म.प्र. से प्रकाशित अखबार में इस कविता पर मुझे पाँच रूपये का प्रथम पुरस्कार मिला।

मुझे बहुत भूख लगती थी। मेरे मोटे होने के कारण दीदी हमेशा ही कहतीं - "मोटी, कम खा, रोटी? ब्याह नहीं होगा तेरा, रोती रहेगी अकेली।"

तभी पापा मुझे बगल में बैठाकर कहते - "अरे, तो क्या हुआ। किसी स्मार्ट से, मोटे से कर देंगे शादी अपनी बेटी की... हा हा हा।"
मैं भी आश्वस्त होकर पापा की गोद में छिप जाती।

मेरी छोटी बहन आज मेडिकल ऑफिसर है। जब उसका मेडिकल लाइन में एडमीशन हुआ, तो मैं काफी रोई थी, बार-बार यही कहते हुए कि मुझे भी डाक्टर बनना है।

पापा ने बहुत समझाया कि बेटा, तुम्हारे कक्षा ग्यारहवीं में एडमीशन के समय इस कस्बे (सिहोरा रोड, म.प्र.) के गर्ल्स सीनियर सेकेंडरी स्कूल में साइंस विषय का प्रावधान ही नहीं था, इसलिए मजबूरी थी। फिर प्यार से कहा - "बेटा! तुम डाक्टर जरूर बनोगी। यह मेरा वादा है।"

मैंने खूब मेहनत की, फलतः एम.ए में मेरी फर्स्ट डिवीजन आई। पापा ने भी भाग-दौड़ करते हुए मेरा सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र. में पीएच.डी. हेतु रजिस्ट्रेशन करवा दिया और मैं हॉस्टल में रहकर जी जान से अहर्निश मेहनत के बल

पर यू.जी.सी. स्कॉलरशिप लेते हुए अंततः 'डा. अंजु लता सिंह' बन ही गई।

जीवन के हर मोड़ पर पापा मुझे प्रेरित करते रहे हैं। मेरी सभी प्रकाशित पुस्तकें पापा जी के शुभाशीष का ही प्रतिफल हैं। पापा हर वर्ष अपने कॉलेज के वार्षिक समारोह में समकालीन लोकप्रिय कवियों को आमंत्रित करके "कवि सम्मेलन" कराते थे। हम सपरिवार कार्यक्रम देखने-सुनने जाते, लेकिन रात भर बीतने के बाद भी अगली सुबह तक कविताएं सुनने का वास्तविक आनंद मैं और पापा जी ही लेते थे।

मेरी रूचि हमेशा 'हिंदी' साहित्य के प्रति गहन और अटूट रही। मेरी दोनों बहनें तो बोर होकर घर चली जाती थीं। भाषा के प्रति मेरा गहन लगाव देखकर ही पापा ने मुझे हिंदी में एम.ए और पीएच.डी. करवाई।

आज मैं सोचती भी हूँ, कि पापा "अगर तुम न होते" तो मेरे जीवन में मेरी आकांक्षाओं का क्या होता?

अभी हाल ही में मेरी बाल काव्य संग्रह पुस्तक "सारे जमीं पर" पर मुझे साहित्यकार सविता चड्ढा जी द्वारा बाल स्मृति सम्मान मिलने जा रहा है, जिसका नाम पापा जी ने ही सुझाया था, क्योंकि फिल्मों के बेहद शौकीन मेरे पापा जी को "तारे जमीं पर" मूवी काफी पसंद आई थी।

इस किताब में भी जमीन पर अवस्थित जीव, जंतु, जन और परिदृश्यों पर कलम चलाई गई है।

पापा के अमूल्य सुझाव सदैव "मील का पत्थर" बने हैं मेरे जीवन में। अपने आगामी लघुकथा संग्रह का नाम "महकता हरसिंगार" पापा जी और मेरे पतिदेव का पसंदीदा नाम है।

कोई भी उपलब्धि मिलने पर मैं आज भी अपने पापा जी से शेयर करती हूँ और उनका आशीर्वाद लेती हूँ।

अक्सर जब अपने मायके गाजियाबाद जाती हूँ, तो पापा से अपने शैशव और किशोरावस्था की रोचक बातें सुनकर सुखद अनुभूति का अहसास होता है।

मम्मी का साथ निभाते हुए मेरे पूजनीय पापा जी कोरोना के कष्टप्रद काल में आकस्मिक रूप से हार्ट अटैक की गिरफ़्त में आकर परमात्मा के पास चले गए। उनके प्रभावी व्यक्तित्व से जुड़े अनगिनत संस्मरण सदैव उनकी यादों को जगाते हुए याद आते रहेंगे।

●●●

हमारे पूज्य: हमारे वट (वृद्ध)

कविता:- अरुणा अभय शर्मा

कोमल जड़ों को देते हैं, घने वृक्ष का रूप ये
जो ना सींचोगे तुम इन्हें, पुनः जड़ हो जाएँगे ये
स्वयं ही खींच लेंगे जल, धरा के गर्भ से ये और
अपनी जड़ शक्ति से, खिला देंगे, फिर नवपल्लव ये
विशाल हृदयता से अपनी, छा जाएँगे, चहुँ ओर ये
सहकर भी तुम्हारी उपेक्षाएँ, स्वाभिमान से जी जाएँगे ये
खड़े भी न रह पाओगे तुम धरा पर, जो रूष्ट हो जाएँगे ये
करलो क्षमायाचना, गगन-सा विस्तृत मन रखते हैं ये
कि झुकते ही तुम्हारे, बन सशक्त स्तम्भ ये
कर देंगे खड़ी, ऐश्वर्य की अट्टालिकाएँ तुम्हारे लिए ये।।

●●●

ससुराल में मेरी प्रथम दीपावली

संस्मरण:- दीपा चौहान 'दीपगीत'

भूली बिसरी यादें - ससुराल में मेरी प्रथम दीपावली
आज जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूं तो ना जाने कितनी ही ऐसी यादें हैं जो मेरे चेहरे पर मुस्कान ले आती हैं। आज मैं जिस सुनहरी याद को ताजा कर रही हूं वह मेरी ससुराल में पहली दीपावली और मेरे जन्मदिन से जुड़ी हुई है।

मेरा विवाह मार्गशीर्ष पूर्णिमा २००० को हुआ था, अंग्रेज़ी महीने में कहूं तो ११ दिसम्बर २००० को। मेरा ससुराल जैसलमेर शहर में लगभग ४० किलोमीटर की दूरी पर है। हमारा परिवार गाँव में नहीं रहता था, पूरा परिवार ही ढाणी (खेती-बाड़ी के लिए जब परिवार अपने पशुओं के साथ खेत में ही रहने लगे और घर भी एक दूसरे से कुछ दूरी पर होते हैं) में रहता था। अभी भी परिवार ढाणी में ही रहता है।

प्रकृति की सुन्दरता केवल पहाड़ों पर ही नहीं, यहाँ रेगिस्तान में भी दृष्टिगोचर होती है, वो भी विभिन्न रूप में। चौमासे में तो प्रकृति पूरे यौवन में होती है। जब वर्षा होती है तो ढाणी का रूप निखर उठता है। एक तरफ ओरण (वह क्षेत्र जो किसी देवस्थान के आस-पास पशुओं के चारागाह के लिए छोड़ दिया जाता है और वहाँ वृक्षों की कटाई निषिद्ध होती है) में हरियाली छा जाती है और दूसरी तरफ हरे-भरे बाजरे व ग्वार के खेत। खेतों के बीच एक घर से दूसरे घर को जोड़ती पतली पगडंडियां। खेत के किसी एक कोने में बनाई ग्वाड़ी (गाय व बकरी के बछड़ों व मैमनों का बाड़ा) से आती गाय व मैमनों की आवाज़ वातावरण को संगीतमय बना देती है। वहाँ शहरों जैसा कोलाहल तो होता नहीं, इसलिए आप प्राकृतिक आवाज़ों को भी ध्यान से सुन पाते हैं।

हमारे यहाँ विवाह के बाद पहला सावन नवविवाहिता अपने पीहर में ही मनाती है और हमने भी अपनी पहली सावन की तीज जैसलमेर में ही मनाई। उन वर्ष भी अच्छी बारिश पड़ी थी, तो खेती-बाड़ी भी अच्छी थी। हमारे पतिदेव और मैं अभी भी अपने विद्यार्थी जीवन में ही थे। वे जोधपुर में अपनी सिविल इंजीनियरिंग के स्नातकोत्तर में थे और मैं राजनीति विज्ञान के स्नातकोत्तर में थी। हम दोनों ही जब भी छुट्टियों में होते, तब ही ढाणी जा पाते थे। विद्यार्थी जीवन में मिली उन छुट्टियों के पल हमारे लिए सदा ही विशेष होते थे।

उस वर्ष, मतलब २००१ की दीपावली की छुट्टियों जैसे ही हुई, हमारे पतिदेव हमे लेने के लिए आ गए थे। जब भी हम दोनों साथ होते थे तो वह समय हमारे लिए बेहद खूबसूरत और विशेष होता था। नवविवाहित जोड़ा वैसे भी एक दूसरे के साथ अधिक से अधिक समय व्यतीत करना चाहता है और हम भी उनसे अलग नहीं थे। अपनी पढ़ाई की वजह से विवाह के बाद हम दोनों को ये अवसर सीमित ही मिलता था और हम दोनों ही उसका उपयोग परिवार के साथ बिताने में ही करते थे।

जब हम ढाणी जा रहे थे, तो पूरे रास्ते में ही हरियाले खेत-खलिहान नजर आ रहे थे। ओरण में भी हरियाली की चादर बिछी थी, पशु-पक्षी सबका घर, ओरण भूमि सब तरह से सम्पन्न थी। देगराय मंदिर के तालाब के साथ हमारे गांव की तलैया पणिहारी भी पानी से भरी हुई थी, उसके आस-पास पशु-पक्षी डेरा डाले हुए थे। हम

जब घर पहुंचे तो ढाणी के मनोरम दृश्य देखते ही रह गए। उस वर्ष फसल बहुत अच्छी हुई थी, चारों ओर बाजरे के खेत लहलहा रहे थे। खेत में खड़ा व्यक्ति नजर नहीं आता था, बाजरे की इतनी ऊँचाई थी। दूसरी तरफ ओरण में बेर की झाड़ियां भी लाल-लाल बेर में भरी हुई थी।

सांझ में अस्त होते सूरज की लालिमा के साथ ग्वाड़ी में पशुओं को संभालती गृहणियां और उस पर मंद गति से चलती हवा के झोंके के साथ ये मनोरम दृश्य हमने अपनी स्मृति में कैद कर लिया। उस दिन दीपावली थी और घर में हमेशा जैसी ही चहल-पहल थी। सभी सुबह के ठंडे वक्त में खेत में थे। हम भी तैयार होकर चंवरे (गोल आकार की झोपड़ी) में आ गए जहाँ हमारी रसोई बनती थी। हमारे पतिदेव भी साथ ही थे। उन्हें हमने खाना परोसा तो उन्होंने सबसे पहले बाजरे की रोटी और गुड़ का चूरमा कर हमें खिलाते हुए जन्मदिन की शुभकामना दी। हां, उस दिन १४ नवम्बर की तारीख थी, जो कि मेरा जन्मदिवस है।

मेरे जन्मदिन पर अक्सर घर में सभी मित्र आ जाते थे और फिर वह दिन हमारे लिए उत्सव जैसा हो जाता था। उस दिन मित्र तो साथ नहीं थे, लेकिन जीवनसाथी का साथ उस दिन को भी विशेष बना रहा था। जब चूरमा खिला कर उन्होंने मुझे जन्मदिन की शुभकामना दी, तो चूरमे की मिठास मेरे जीवन में हमेशा के लिए बस गई। वह मिठास दुनिया के किसी और मिष्ठान में नहीं मिली मुझे आज तक। दीपावली की सांझ हमारे ससुराल में बहुत विशेष होती है। रसोई सबकी अलग बनती, लेकिन दीपावली का रात का खाना सभी माँ के घर पर ही खाते थे। माँ के पास ही बैठ सभी भाई खाना खाते और बहुएँ एक साथ रसोई में ही हंसी-मज़ाक के साथ साझा रसोई का आनंद उठाती थी। हम तो शहर में पले-बड़े थे, गाँव तो जाते थे, लेकिन दीपावली के दूसरे दिन तो इन परंपराओं को अब देख समझ रहे थे।

रात के खाने के बाद सब बच्चे घर से बाहर आकर दीये बनाते। वे दीये भी हमने पहली बार वहीं देखे। आक (धतूरा) के पौधे की डालियों पर तेल में भीगा कपड़ा बांध कर उसमें आग लगा कर हवा में लहराते हुए सब बच्चे एक विशेष वाक्य दोहराते। सभी यहाँ की बोली में कहते: "दीयाली रा दिया दिठा काचर, बोर, मतिरा मीठा" — अर्थात हमने दीपावली के जलते दीपक देख लिए, अब खेत में होने वाले काचर (यहाँ की एक देशी सब्जी), बेर और मतीरे (राजस्थान का तरबूज़) सब मीठे हो जाएंगे।

इन दीपावली के दीयों के साथ दीपावली पूजन और थोड़े-बहुत पटाखे फोड़ कर सगुन किया गया था। सभी तरह की परंपरा का निर्वाह कर रात में जब आंगन से आसमान को निहारा तो, टिमटिमाहट के साथ हजारों तारे जैसे प्रकाश पर्व के साथ मुझे मेरे जन्मदिन की शुभकामना देते प्रतीत हो रहे थे।

और उस दिन को और भी विशेष बना रहा था हम दोनों का साथ। रात तो अमावस्या की थी, मगर दीपावली की रोशनी और तारों छाई रात में अपने हमसफर का साथ पाकर मेरा वह जन्मदिन और त्योहार सदा के लिए एक प्यारी याद बनकर अविस्मरणीय हो गया।

•••

इंसान का सच

कविता:- डॉक्टर रंजना दुबे

इंसान हो? सच में?
या फिर जिंदा लाश?
वक्त पर बोलता क्यूँ नहीं?
अन्याय देख कर भी चुप है।
तेरी नजरें अंधी क्यूँ हो जाती हैं?
तेरा जिस्म मुर्दों की तरह,
क्यूँ करता है व्यवहार?
निष्क्रिय सा पड़ा रहता है,
कोई प्रतिक्रिया नहीं देता।
सफेद बर्फ जैसे बिछी हो तन पर,
तेरी अंतरात्मा न्याय के लिए चित्कार नहीं करती।
क्यूँ?
लगता है तेरी आत्मा का सूरज,
अस्त हो गया है।
लेकिन यह झूठ है......
उठ, जाग, चैतन्य हो जा।
अपने सक्रिय होने का प्रमाण दे।
जिंदा इंसान है न तू...... तो फिर,
अपनी आत्मा को जीवित रख!
जीवन को समझ, चीखने का साहस कर,
ताकि मानवता का संसार बचा रहे।

•••

वो एक दुकान

संस्मरण:- डॉ. नीना छिब्बर

महानगर मुम्बई, सपनों का शहर, एक शहर जो सोता नहीं है और सोने देता भी नहीं है, जहाँ कोई भूखा सोता नहीं है। जहाँ पर गगनचुंबी इमारतों के साथ उतनी ही शान से अपना अस्तित्व बनाए खड़ी रहती झुग्गी-झोपड़ियां, कच्चे-पक्के मकान और बहुत बड़ी सिमेंटी पाइपों में पुराने कपड़ों से पर्दा बना कर घर की शक्लनुमा कुछ घर-सा।

यहाँ आकर हर राज्य का निवासी बस थोड़े ही दिनों में मुम्बईकर बन जाता है। इसी महानगर में उपनगरीय बोरीवली स्टेशन। यहीं से अधिकतर लोकल ट्रेन चल कर सभी के पेट की आग को बुझाती है और सपनों को पूरा करने में सहायता करती है।

इसी बोरीवली पूर्व में एक मंजिला इमारत जिसमें एक रूम और दो रूम के फ्लैट बने हैं। करीब चालीस परिवार रहते हैं और इसी के एक कोने पर 32 फीट वर्ग गज की एक दुकान, जिसकी ऊंचाई 5 फीट के करीब है, एक पूरे परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ति करने की जद्दोजहद में लगी रहती थी।

इस दुकान में मोटर पार्ट्स का सामान बेचा जाता था। करीब पचास साल के पिता बड़े झोले में सामान थोक विक्रेता से लाकर इस दुकान पर बेचते थे। मेरे पिता जो हमेशा कहते थे कि मौत और ग्राहक का भरोसा नहीं होता, कभी भी आ सकते हैं। हारी बीमारी में भी दुकान को समय पर खोल कर बैठ जाते।

इस 32 फीट वर्ग गज की दुकान लोहे और स्टील के पार्ट्स से भरी रहती और इसमें लोहे के अरमानों वाला एक पिता बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा था। दुकान उसकी आहट को पहचानती थी और एक दिन सूरज की किरणों ने पाया कि उसकी मुस्कान रूक गई। दुकान से अस्पताल और वहां से सीधे परमलोक।

वो एक दुकान अब फिर आबाद की लोहे के सीने वाले के पुत्र ने, जिसका दिल आसमान जितना बड़ा था। दुकान और वह एक-दूसरे को समझने लगे, बढ़ने लगे। साथ ही बढ़ने लगी भाई की शुगर। भगवान भी किसी को चिंता, तनाव, दुखों का कारखाना बना देता है। जिम्मेदारियों को दुकान और भाई ढो रहे थे। एक पैर से लाचार होने पर भी दुकान खोल कर बैठता था। भावहीन पर द्वंद्व को आँखों में लिए, एक दिन वह भी चला गया पिता को मिलने।

वो एक दुकान अब बुढ़ी विधवा माँ का आखिरी सहारा। पर मुम्बई दिल से नहीं, दिमाग से सोचने वाले सेठों की चालबाजियों का भी अड्डा है। बस फिर क्या था? सेठ और अम्मा के बीच दुकान कुरुक्षेत्र बन गई। इसमें परिवार के ही शकुनी और विभीषण आकर खेल को पलट देते थे।

एक दिन वो एक दुकान, जो एक पूरा खानदान चलाती थी, अम्मा के हाथों से कोड़ियों के भाव से सेठ ने एक ही पैंतरे में अपना लिया। अम्मा, जो उस दुकान की जगह नई बिल्डिंग बनने के बाद नई दुकान के अरमानों को रोज याद करती, कोसती अपने भाग्य को और याद करती दुकान को।

वो एक दुकान, अम्मा के जाने के बाद भी आज भी उसी तरह बंद, जर्जर पड़ी है। देखकर लगता है कि अभी दरवाजे के कोने से भाई आवाज देगा, "आ जा भेलपुरी खाते हैं।" उसके पास से गुजरते हुए दिल की धड़कनें बढ़ती हैं, पैर थम जाते हैं और मन तो उछल कर बाहर आ जाता है।

वो एक दुकान बोल पाती तो यकीनन कहती: "एक बार दरवाजा खोल कर आओ, बैठो, सुनो मेरे दिल की।"

सद्भावना की मृगतृष्णा: भाषण, गीत और पूंजी का खेल

आलेख:- डॉ मुकेश असीमित

सद्भावना पर जितने भाषण, कविताएँ और गीत लिखे गए हैं, शायद ही किसी अन्य विषय पर हुए हों। यह वह शब्द है, जिसकी छाया में दुनिया के हर बड़े नेता, हर धर्मगुरु और हर चिंतक ने अपनी-अपनी बात कही है। मंचों पर भाषणों की गूँज, कविताओं की पंक्तियाँ और गीतों की मधुर तानें हमें बार-बार याद दिलाती हैं कि इंसानियत से बड़ा कोई धर्म नहीं। परंतु विडंबना यह है कि ज़मीन पर इसका असर नगण्य ही दिखाई देता है।

साहिर लुधियानवी ने साठ के दशक में लिखा था— "ना हिंदू बनेगा, ना मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है, इंसान बनेगा।" ये पंक्तियाँ उस दौर में गूँजीं जब समाज साम्प्रदायिक तनावों से जूझ रहा था और आज भी वही पंक्तियाँ उतनी ही प्रासंगिक हैं। फर्क बस इतना है कि आधी सदी से भी अधिक गुज़रने के बाद भी हम आज तक "इंसान बनने" की राह पर खड़े हैं, पहुँचे नहीं। सवाल यही है कि आखिर इंसान बनने की प्रक्रिया इतनी लंबी और कठिन क्यों है? वह कौन सी रुकावट है जो हर बार हमें पीछे धकेल देती है?

दरअसल, समाज में भाषण और व्यवहार के बीच गहरी खाई है। हम मंच से भाईचारे की दुहाई देते हैं, शांति और सद्भावना का संकल्प लेते हैं, मगर बाहर निकलते ही खेमों में बँट जाते हैं। धर्म, जाति, भाषा और राजनीति के नाम पर इतनी दीवारें खड़ी कर लेते हैं कि सद्भावना का कोई बीज जड़ ही नहीं पकड़ पाता। यही कारण है कि "सद्भावना मिलन" जैसे आयोजन अक्सर खोखले प्रतीत होते हैं। वे एक आदर्श का सपना दिखाते हैं, लेकिन जीवन की वास्तविकता से टकराते ही बिखर जाते हैं।

कई बार तो लगता है कि सद्भावना केवल भाषणों की शोभा है— एक ऐसा शब्द जो सभाओं और उत्सवों में सुनने में अच्छा लगता है, लेकिन जिसकी कोई जड़ हमारे व्यवहार में नहीं है। भाषणों का असर भी उतना ही होता है जितना आतिशबाज़ी का—चमकती है, गूँजती है और तुरंत गायब हो जाती है।

असल में, सद्भावना कोई नारा नहीं, बल्कि जीवन पद्धति है। यह हमारे रोज़मर्रा के आचरण में प्रकट होनी चाहिए। पड़ोसी से संबंधों में, मित्रता में, कार्यस्थल पर सहयोग में—हर जगह यह झलकनी चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से हमारी प्राथमिकताएँ बदल चुकी हैं। सहयोग की जगह प्रतिस्पर्धा ने ले ली है, और भाईचारे की जगह टकराव को सम्मान मिलने लगा है।

आज का समाज इस विडंबना में जी रहा है कि जहाँ एक ओर हम "वसुधैव कुटुम्बकम्" का उद्घोष करते हैं, वहीं दूसरी ओर सोशल मीडिया पर, राजनीति में और यहाँ तक कि पारिवारिक रिश्तों में भी छोटी-छोटी बातों पर विभाजन पैदा कर देते हैं।

इस समस्या को और गहरा करता है पूंजी, राजनीति और धर्म का गठजोड़। पूंजीवाद ने सद्भावना को भी बाजार की वस्तु बना दिया है। धर्मगुरुओं के बड़े आयोजन हों या राजनीतिक रैलियाँ— सद्भावना के नारे वहाँ खूब गूँजते हैं, पर उनका मकसद अक्सर लोगों को जोड़ना नहीं, बल्कि खेमों में बाँटना होता है।

राजनीति सद्भावना की भाषा का इस्तेमाल वोटों के लिए करती है, धर्म उसे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए, और पूंजी उसे ब्रांडिंग और प्रचार के लिए। इस तरह सद्भावना धीरे-धीरे अपने मूल अर्थ से दूर जाकर केवल दिखावे का औजार बन जाती है।

यदि हम ईमानदारी से सोचें तो सद्भावना की असली परख केवल एक है—सहयोग। और वह भी निस्वार्थ सहयोग। जब तक हम दूसरों की मदद केवल अपने स्वार्थ के लिए करेंगे, तब तक वह सद्भावना नहीं कहलाएगी। असली सद्भावना तब है जब आप किसी की मदद इसलिए करते हैं क्योंकि आपको उसमें सुख मिलता है, और उसके लिए आप खुद को कृतज्ञ मानते हैं कि आपको किसी और की सेवा का अवसर मिला।

तुलसीदास ने कहा था—"स्वार्थ पर आधारित प्रेम प्रेम नहीं, लेन-देन है।" यही बात सद्भावना पर भी लागू होती है। असली सद्भावना वही है जो बिना शर्त और बिना किसी स्वार्थ के हो। यहीं से असली प्रश्न खड़ा होता है—क्या सद्भावना केवल भाषणों और कविताओं तक सीमित रहेगी? या कभी यह हमारे व्यवहार का हिस्सा भी बनेगी? क्या हम आने वाली पीढ़ी को केवल सफलता और करियर के पीछे भागना सिखाएँगे, या उन्हें संवेदनशील इंसान भी बनाएँगे?

सद्भावना की असली परख सहयोग है — निस्वार्थ सहयोग। यदि तुम्हारी सद्भावना किसी लाभ की परत ओढ़कर आ रही है तो वह असलियत में सद्भावना नहीं, लेन-देने का खेल है।

अगर सद्भावना को व्यवहार का हिस्सा बनाना है तो हमें इसे छोटे-छोटे कार्यों से शुरू करना होगा। पड़ोसी की खुशी में खुश होना, मित्र की कठिनाई में उसके साथ खड़ा होना, परिवार में संवाद बनाए रखना, कार्यस्थल पर सहयोग की संस्कृति पैदा करना—ये सब सद्भावना के छोटे-छोटे बीज हैं। इन्हीं से बड़ा वृक्ष तैयार होगा।

धार्मिक परंपराएँ हमें निस्वार्थ सहयोग का महत्व समझाती रही हैं। इस्लाम में "ईद-उल-फितर" यानी "दान की ईद" इसी विचार का प्रतीक है। यह त्योहार इस बात का उत्सव है कि तुम केवल आनंद लेने के लिए नहीं जिए, बल्कि तुमने किसी और को आनंद का अवसर दिया। ज़कात और फितरा देने वाला व्यक्ति खुद को कृतज्ञ मानता है कि उसे किसी और की सहायता करने का मौका मिला। लेकिन देखिए पूंजीवाद ने क्या किया। "दान की ईद" को हमने "मीठी ईद" में बदल दिया—क्योंकि दान के पीछे छुपे निस्वार्थ भाव को समझना कठिन था, और मिठास का दिखावा आसान था। यही पूंजीवाद की चाल है—वह सार को छोड़कर केवल सतह बेचता है। भावनाओं की जगह ब्रांडिंग आ जाती है, और सहयोग की जगह प्रदर्शन।

दान का राग सुंदर है, पर यदि दान का मकसद केवल अपना पुण्य पोस्ट करना है तो उसका सार गायब हो गया।
और अब इसमें तकनीक और AI ने भी कदम रख दिया है। बुद्धिमत्ता के इन उपकरणों से समाज का संगठन नया रूप ले रहा है — कुछ ही हाथों में शक्ति और संपत्ति संकेंद्रित होती जा रही है, और बाकी लोग भीड़ में शेष रह जाते हैं। जब नौकरी का अर्थ बदल जाए, अर्थव्यवस्था तरल हो जाए और रोज़गार-स्रोत सिमट कर कुछ केंद्रों पर झुंड आएँ — तब सहानुभूति कहाँ से आएगी? यह सवाल सिर्फ आर्थिक नहीं, नैतिक भी है।

सद्भावना की दुश्मन-सूची में एक और तत्व है: "सिलेक्टिव सद्भावना" — वह सद्भावना जो चयन करती है, जो किन्हीं विशेष वर्गों, समुदायों या हितों के लिए होती है और बाकी को बाहर रख देती है। ऐसी सद्भावना राजनीतिक हथियार बन जाती है; वह समाज को जोडने की बजाय बांटती है। असलियत में, वास्तविक प्रेम/सहयोग वही है जो निस्वार्थ हो — और जिसे पाने के लिए तुम्हें भी अपनी अहमियत थोड़ी कम करनी पड़े।

हमारे समाज में अक्सर भाषणों का प्रभाव तभी टिकता है जब उसके पीछे व्यवहार का समर्थन हो। मंचों पर भाषण देकर हम अपनी आत्मा का सुख लेते हैं; पर असली कसरत तो जीवन-क्षेत्रों में करनी होती है — पड़ोसी की मदद, मित्र की त्रुटि पर क्षमा, किसी की तकलीफ पर सक्रिय हस्तक्षेप। छोटे-छोटे सहयोगों का क्रम बड़ा वैश्विक परिवर्तन बन सकता है — पर उसे पूंजी वाला मॉडल तेज़ी से काट देता है: "हमें दिखाओ कि तुम कर रहे हो" — और फिर सब कुछ दिखावे तक सिमट कर रह जाता है।

यही कारण है कि सद्भावना पर लिखी गईं कविताएँ और भाषण अगर व्यावहारिक आदतों में न उतरें, तो वे दीवारों पर टंगी शायरी बनकर रह जाती हैं। समाधान? सरल पर कठिन: शिक्षा-प्रणाली में संवेदनशीलता भरना, बच्चों को स्क्रीन के अंदर नहीं छत के ऊपर देखने की आदत देना, समुदाय स्तर पर परस्पर-सहयोग के छोटे-छोटे संस्थान बनाना। और सबसे ज़रूरी — अपने भीतर से "सिलेक्टिविटी" हटाना और वास्तविक निस्वार्थ सहयोग को जीवन का अंग बनाना।

यदि हम यह नहीं कर पाएँ, तो सारे भाषण, सारे गीत, सारे जश्न केवल शोर बनकर रह गए — और म्यूज़ियम में रखी पुरानी आदतें बन जाएँगी। सद्भावना का मृगतृष्णा तभी वास्तविकता बनेगी जब हम उसे अपना व्यवहार बनाकर दिखाएँ — न कि केवल मंचों पर आवाज़ उठाकर।
सद्भावना का सबसे बड़ा शत्रु कोई धर्म नहीं है, कोई जाति नहीं है, कोई मज़हब नहीं है। असली दुश्मन है पूंजी और उससे उपजा पूंजीवादी चिंतन। यह सुनने में अजीब लगता है, क्योंकि पूंजीवाद ने दुनिया को दिखावटी तौर पर सुविधाएँ दीं, प्रगति दी, चमक-दमक दी। परंतु जब हम गहराई से झाँकते हैं तो पाते हैं कि यह सारी सुविधाएँ, यह सारी चमक केवल भ्रम है—एक ऐसी चमक जिसमें मानवीय संवेदना धीरे-धीरे बुझ रही है।

पूंजी की बुनियाद ही प्रतियोगिता और विभाजन पर टिकी होती है। वह कभी एकसाथ सबको जोड़ती नहीं; वह जोड़ने का नाटक करती है और भीतर से बाँट देती है। यही कारण है कि पूंजीवाद कभी प्रगतिशील सद्भावना को फंड करता है, तो कभी पुरातनपंथी सद्भावना को। एक तरफ वह कहता है—"सब एक हो जाओ", तो दूसरी तरफ वह कहता है—"अपनी-अपनी पहचान के खेमों में सिमट जाओ।" इस दोहरे खेल से समाज एकजुट नहीं होता, बल्कि और बिखरता है।

इक्कीसवीं सदी के पहले दो दशकों तक हमें लगा कि तकनीक हमें जोड़ रही है। लेकिन धीरे-धीरे स्पष्ट हुआ कि यही तकनीक असमानता की खाई और चौड़ी कर रही है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) इसका सबसे ताज़ा उदाहरण है।

कुछ ही वर्षों में एआई उन लाखों-करोड़ों नौकरियों को निगल जाएगा जिन पर आज मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग आश्रित हैं। शिक्षक, प्रबंधक, पत्रकार, डॉक्टर, यहाँ तक कि सिपाही और सैनिक भी—सब मशीनों और एल्गोरिद्म के आगे कमजोर पड़ जाएँगे। तब होगा क्या? होगा यह कि दुनिया की सारी संपत्ति और शक्ति कुछ लाख लोगों के पास केंद्रित हो जाएगी, और बाकी अरबों लोग केवल "भीड़" बनकर रह जाएँगे।

कल्पना कीजिए, एक तरफ ऐसी दुनिया जहाँ चंद लोग तकनीक और पूंजी के मालिक हों, और दूसरी तरफ 10 अरब लोगों की थकी, बीमार, भूखी भीड़ खड़ी हो। उस वक्त क्या कोई सद्भावना टिक पाएगी? पूंजीपति की करुणा वहीं तक होगी कि वह कहे—"ईश्वर, इन सबको उठा लो।" करुणा का यह स्वरूप भेड़िए के उस न्योते जैसा है, जिसमें लोमड़ी को नाश्ते पर बुलाया जाता है, लेकिन नाश्ते की मेज़ ही भेड़िए के पेट के भीतर होती है। यानी, पूंजीवादी करुणा असल में शोषण का दूसरा नाम है।

आज दुनिया का सबसे बड़ा संकट यही है कि हम अपने पड़ोसी के दुख में सुख ढूँढने लगे हैं। यदि पाकिस्तान दरिद्रता से जूझ रहा है, तो हमें तसल्ली होती है कि "देखो, हम उनसे अच्छे हैं।" यदि भारत किसी संकट से गुजरता है, तो पड़ोसी देश अपने झंडे उठाकर खुशी मनाते हैं। यही प्रवृत्ति परिवारों और समाजों तक फैली हुई है—पड़ोसी की गाड़ी खराब हो जाए तो हमें चैन मिलता है कि हमारी अब भी चल रही है।

पर यह सोच सबसे बड़ी मूर्खता है। पड़ोसी का मातम कभी भी तुम्हारे लिए वास्तविक आनंद नहीं ला सकता। क्योंकि असल सुख तभी संभव है जब तुम्हारा पड़ोसी भी मुस्कुरा रहा हो। यही कारण है कि बाइबल कहती थी—"ध्यान रखो कि तुम्हारा पड़ोसी दुखी न हो।" लेकिन हमने पूरी ताक़त इस पर लगा दी है कि पड़ोसी कितना दुखी हो सकता है।

यही विडंबना है—हम अपने चारों ओर ऐसे बबूल बो रहे हैं जिनसे कभी आम फल नहीं सकते। हम दूसरों को दुखी करके सोचते हैं कि खुद सुखी हो जाएँगे। यह असंभव है। सद्भावना का मूल यही है कि आनंद तब तक अधूरा है जब तक वह साझा न हो।
अब सवाल है: समाधान क्या है? भाषणों से तो यह संकट नहीं टलेगा। असली समाधान है अगली पीढ़ी को संवेदनशील बनाना। बच्चों को केवल "सफल" बनाना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि सफलता की परिभाषा ही पूंजीवाद ने बिगाड़ दी है। अगर बच्चे को केवल करियर मशीन बना दिया, स्क्रीन में गाड़ दिया और संवेदनाओं से काट दिया, तो वह आगे चलकर पूंजीवादी शोषण का हिस्सा ही बनेगा।

हमें बच्चों को यह सिखाना होगा कि सफलता का मतलब है—दूसरों को आनंद का कारण बनना। उन्हें यह दिखाना होगा कि पेड़ सिर्फ ऑक्सीजन का स्रोत नहीं, बल्कि करुणा का प्रतीक भी है। स्क्रीन से बाहर झाँकने की आदत डालनी होगी, छत और आकाश देखने का अभ्यास कराना होगा। तभी उनमें सहयोग की असली भावना पैदा होगी। भविष्य की असली चुनौती यही है—क्या हम पूंजीवाद की करुणा-भेड़िया कथा में फँसेंगे, या निस्वार्थ सहयोग की राह चुनेंगे? अगर हमने सहयोग को जीवन का सूत्र नहीं बनाया, तो आने वाले कल में न धर्म बचेगा, न संस्कृति, न ही इंसानियत। सब म्यूज़ियम की वस्तुएँ बनकर रह जाएँगी।

सद्भावना का संकट असल में हमारी संवेदनाओं का संकट है। और संवेदनाओं को बचाना आज की सबसे बड़ी राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक लड़ाई है। यही लड़ाई तय करेगी कि आने वाली सदी में इंसान केवल मशीनों के सहायक बनेंगे या संवेदनशील मनुष्य भी रहेंगे।

भाषणों और गीतों की दुनिया मोहक है, पर उससे अधिक मोहक है व्यवहार में सद्भावना को जीना। अगर हम सच में इंसान बनना चाहते हैं, तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि सद्भावना कोई पर्व नहीं, बल्कि जीवन की स्थायी आदत है। और यह तभी संभव है जब हम प्रतिस्पर्धा और विभाजन के बजाय सहयोग और संवाद को प्राथमिकता दें। वरना सद्भावना बार-बार वही रहेगी जो अभी है—एक मृगतृष्णा। दूर से चमकती हुई, आकर्षित करती हुई, पर पास पहुँचते ही ओझल हो जाने वाली।

•••

नारीवाद

कविता:- नवीन शशी

आज खाना खा के
खुद से
अपनी थाली धोया मैंने!
मां ने कई बार रोका
मैं न रुका आज
फेमिनिज्म को अपनाया मैंने!
मां चौंकी ये क्या हुआ
क्यों धोया तूने थाली?
बड़ा चला है
नारियों का उद्धार करने!
जा अगर करना है
तो रोक, रोक के दिखा
बचपन में बियाहती लड़की
मोहब्बत में भटकती लड़की
रसोई में सपने देखती लड़की!
मैं रुक गया
कैसे न रुकता
ये मेरा काम नहीं
जग में बड़ा बनना मुझे
कुछ किताब लिखूंगा
भले उन तक न पहुंचे
एक फिल्म बनाऊंगा
उनसे पैसे कमा लूंगा
भाषण सुनाऊंगा
टिकट मिल जायेगा
नारी विमर्श कर लूंगा
सम्मान भारत रत्न ले लूंगा!
कौन उतरे मैदान में
धूल भरी सड़क के
टूटे नालों के बगल वाली बिल्डिंग में
छटपटाते गलियों में!
मुझसे न होगा मां!
देखा हार गया न
फिर जा, ये थाली मुझे धोने दे
अबकी फिर इधर खोखले नारीवाद से
पाप न धोने की कोशिश करना!
नहीं मां, मैं नारीवाद हूं
तेरे पढ़ाए- लिखाए का फल हूं
चल नालायक झूठा
तू कायर डरपोक और बदमाश है
जो सिर्फ बात करता है बड़ी-बड़ी!

•••

मानो या ना मानो

संस्मरण:- महेश सोलंकी

सत्य तत्व वो है जिसे झूठलाया नहीं जा सकता। जिसने जन्म लिया है उसे जाना ही पड़ेगा। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जन्म लेने का कारण एक है, परन्तु मौत (मृत्यु) के कारण असंख्य हैं। जोधपुर की धरा पर हुए हृदय विदारक हादसे ने सम्पूर्ण जोधपुर को हिला कर रख दिया। मेहरानगढ़ स्थित माँ चामुण्ड के दर्शन को गए भक्तों की अकाल व असमय मृत्यु ने सम्पूर्ण क्षेत्र को शोक की चपेट में ले लिया है। जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस घटना के लिए सभी माँ को दोषी ठहरा रहे हैं।

लेकिन क्या आपने सोचा? वो माँ चामुण्डा जिसे 548 वर्ष पूर्व सन् 1460 में मेहरानगढ़ में राजा सव जोधा ने स्थापित किया और उस माँ ने जोधपुर के भक्तों की भक्ति देखकर जोधपुर की हर पल हर वक्त रक्षा कर अपना कर्तव्य निभाया। पाकिस्तान द्वारा किए गए जोधपुर आक्रमण के दौरान गिराए गए बारूद को माँ ने अपनी शक्ति से निष्क्रिय कर जोधपुर के लोगों को एक नया जीवन दान दिया, जिसके परिणाम स्वरूप जोधपुर का अस्तित्व आज भी कायम है। अन्यथा विश्व के मानचित्र से जोधपुर का नामो-निशान ही मिट जाता। आज यही माँ जोधपुर की आन-बान-शान का प्रतीक है।

हम सब को मानना होगा कि उस माँ की भी कोई वजह रही होगी, जिसने अपने चरणों में पधारे सच्चे भक्तों को अपनी शरण में

बुलाने के लिए इस क्रूर नीति को बनाया। खुद को कलंक के टीके से नहलाया और न चाहते हुए भी जोधपुर की जनता को खून के आंसू रुलाया। ये उन भक्तों के अच्छे कर्मो का फल ही था, जो उन्हें माँ के दरबार में मुक्ति मिल गई। और हमें उनके अंतिम दर्शन हुए। जरा सोचिए, अगर हम भी दूसरों की तरह बम ब्लास्ट में अपने किसी परिजन को खो देते, जहाँ उन्हें पहचान पाना तो दूर, उनके शव और अवशेषों को प्राप्त करना भी मुश्किल होता। इस हैवानियत और दर्द भरी मौत से तो लाख गुना अच्छी थी। ये मौत अगर ऐसा सोच कर हम अपने दिल और दिमाग को शांत करें तथा अपने आप को संभाले, ताकि हम उनके लिए सहारा बन सकें, जिन्होंने अपने पुत्र, भाई, पति, पिता और दोस्तों को खोया है।

एक बच्चे से बिछड़ने का गम माँ को होता है, उसी तरह जिस तरह कलियों से बिछड़ने का गम फूलों को होता है। प्यास उसे लगती है जो धूप में खड़ा हो। दर्द उसे होता है जो रिश्ता प्यार से जुड़ा हो। इसलिए इस हृदय विदारक हादसे से हम सभी संतप्त व स्तब्ध हैं, क्योंकि हम इस प्यार की नगरी जोधपुर के नागरिक हैं, जो अपने अपनापन व प्यार के रिश्तों के कारण विश्व प्रसिद्ध हो चुका है। अगर आशीर्वाद है, तो उस माँ चामुण्डा का, जिसकी शरण में हम अपना जीवन बिता रहे हैं। माना, माँ के प्रति क्रोध आज भी हमारे दिल में है, लेकिन कहीं पर प्यार भरी आस्था भी मौजूद है। इस दिल में। जहां हम शोक संतप्त व स्तब्ध हैं, वहीं हर्षोल्लास व उत्साह से नहीं, लेकिन शांति व सादगी से आज भी हर घर में घट स्थापना कर के हमने अपनी आस्था को कायम रखा है।

हम एक बार पुनः आस्था की भीड़ में खो गए, माँ के चरणों में सो गए। उन सभी दिवंगत आत्माओं को शत्-शत् नमन कर श्रद्धा के पुष्प अर्पित करते हैं, और परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करेंगे कि वे उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें और उनके परिजनों को इस दुःखद घटना को सहने व अपने जीवन को आगे बढ़ाने की शक्ति प्रदान करें।

शहादत

कविता:- सुन्दर लाल मेहरानियाँ

जिगर पे उसने यूँ दुश्मन का लोहा फिर खाया होगा।
लिखी वतन के नाम जवानी याद उसे आया होगा।।
मिला उसे दामन फिर ऐसा,नींद टूटने ना पाई,
छुपा लिया आँचल में जिसने,कैसा वो साया होगा।
सरहद का वो वीर तिरंगे में,जब लिपटा आया था।
आँगन का हर कोना-कोना देख उसे थर्राया था।।
कहा ना जाये और दर्द अब,उस आँगन की मिट्टी का,
विदा हुआ था जब घर से तो,उसका तिलक लगाया था।
कहें आसमाँ जग जिसको,खुद को फौलाद बनाया था।
भारी मन से एक अश्क आँखों में छलक कर आया था।।
सहा ना जाए और दर्द, इतना भारी आघात सहा,
मिला भारती का दामन,सौभाग्य तिरंगा पाया था।
मेहंदी वाले हाथों ने जब,चूड़ी कंगन तोड़े थे।
आँखों में आँसू उसके,गंगा यमुना से दौड़े थे।।
चीत्कार उठा सिंदूर माँग का,लगा माँगने हक अपना,
छोड़ गये क्यों हमें अकेला,पहले दुख क्या थोड़े थे।
पूछ रही नन्ही सी जान,पापा क्यों बात नहीं करते।
भूल गए क्या अपनी परी को,अब तुम #याद नहीं करते।।
नहीं बिठाते मुझे गोद में,भूल हुई मुझसे कोई,
हाथ नहीं रखते सर पे,थोड़ा भी प्यार नहीं करते।
गर मैं कभी अब रूठूँगी तो,मुझको कौन मनाएगा।
मेरी प्यारी गुड़िया कहकर,मुझको कौन बुलाएगा।।

चूडी कंगन जब पहनूँगी,सुर्ख लाल जोड़ा सर पे,
जिगर के अपने इस टुकड़े की,डोली कौन सजायेगा।
राखी हुई उदास बहुत,जब साथ कलाई ने छोड़ा।
रास नहीं आया तुझको,क्या खून का रिश्ता है तोड़ा।।
दिया एक दिन वचन हमें,मरकर भी प्रण निभाऊँगा
गये अधूरा वचन छोड़,तुमने तो अब है मुह मोड़ा।
जिगर के टुकड़े का चेहरा,ममता की मूरत ने देखा।
और सहा ना जाए दर्द,कहती माथे की वो रेखा।।
करी #वतन के नाम जवानी,दूध लजाया ना मेरा
प्यार किया फिर जी भर के,दामन में उसे समेटा।
देखा मंजर मातम का,बचपन फुट फ़ूट कर रोया था।
वो अल्हड प्यारा सा साथी,गहरी नींद में सोया था।।
रखा बचाकर अब तक जिसको,लगता है अब रूठ गया
जाकर कहाँ तलाश करूँ,ना जाने कहाँ पर खोया था।
जिन राहों से गुज़री डोली,मातम उनमें छाया था।
पीपल का वो पेड़ लगे आलिंगन करने आया था।
हुआ उदास आसमाँ फिर,छा गई घटा काली नभ में,
देख शहादत का डोला इन्द्रासन भी थर्राया था।
देख शहादत का डोला इन्द्रासन भी थर्राया था।

●●●

हर अखबार पर युद्ध ही युद्ध छपा है

कविता:- सुनील कुमार "सत्यार्थी"

सब के सब लड़ रहे हैं खिलौनों के लिए।
क्या पागल हो गए हैं लोग नगीनों के लिए।।
ज़ुल्म भी सहता है, ठिठोली भी करता है।
यारों का कत्ल कर बैठा इक हसीनों के लिए।।
सत्कार में जो मजा है रुखसत में कहा।
धरा के पास जगह ही नहीं दीवानों के लिए।।
हर अखबार पर युद्ध ही युद्ध छपा है।
आवाज ही न उठाते कोई सकीनों के लिए।।
कॉलेज में पड़कर इतने मेधावी बन गए।
रिश्ता ही तोड़ दिए हम इक मशीनों के लिए।।
लिखने वालों ने लिखी हजारों कहानियां।
बहुत कम ही लिखा गया है परवानों के लिए।।
साक़ी की नजरों पर भरोसा नहीं सत्यार्थी।
खतों से कमरा भर गया अफसानों के लिए।।

●●●

रंगोली सजाओ

आलेख:- डॉ. नीना छिब्बर

"हरी हरी वसुंधरा पे नीला नीला ये गगन
के जिस पे बादलों की पालकी उड़ा रहा पवन
दिशाएं देखो रंगभरी, चमक रही उमंग भरी
ये किसने फूल फूल पे किया सिंगार है
ये कौन चित्रकार है, ये कौन चित्रकार है।"

रंग जीवन में नवचेतना संचारित करते हैं। ईश्वर की हर एक कृति दूसरी कृति से अलग है, भिन्न है। रूप, रंग, आकार, प्रकार, सुगंध, सौंदर्य का अनंत विस्तृत फलक चारों ओर फैला है। हर रंग का अपना सौंदर्य है। रंगों को देखकर मन में अनेक भाव उत्पन्न होते हैं। चटकीले, खुशनुमा रंग देखकर उदास और निराश मन भी प्रफुल्लित हो जाता है।

भारतीय संस्कृति में तो सुख-दुख, हर्ष-विषाद, विवाह, जन्म-मरण के भी रंग निर्धारित हैं। रंगों को हमने दैनिक जीवन में रचाया बसाया है। घरों के बाहर अल्पना, रंगोली, मांडना, कोलम—खूबसूरत रंगों में सजाकर घर की सुंदरता के साथ भीतर की कलात्मकता को भी नए आयाम देते हैं।

रंगोली एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है—रंगों के जरिए भावनाओं को अभिव्यक्त करना। भारत के कुछ क्षेत्रों में इसे अल्पना भी कहते हैं। यह संस्कृत शब्द “अलेपना” से बना है,

जिसका अर्थ है ‘लीपना’ या ‘लेपन करना’, क्योंकि रंगोली बनाते समय दीवारों या जमीन पर लेपन किया जाता है। अल्पना वात्सायन के काम-सूत्र में वर्णित चौंसठ कलाओं में से एक है। रंगोली का वर्णन मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता में भी मिला है। इस कला का सीधा संबंध 5000 वर्ष पूर्व की सभ्यता से है। रंगोली में मुख्यतः सूखे और गीले रंग, पिसे हुए चावल, सूखे पत्तों का पाउडर, चारकोल, लकड़ी का बुरादा, फूल आदि उपयोग में लाए जाते हैं। यह अधिकतर आँगन के मध्य, बेल के रूप में चारों ओर, कोनों पर, मुख्य द्वार पर, भगवान की चौकी के पास, दीप के सामने और दीवारों पर बनाई जाती है। इसमें अधिकतर ज्यामितीय आकृतियाँ और पुष्प अंकित किए जाते हैं। ये आकृतियाँ त्रिभुज, वृत्त, षटकोण, सीधी रेखाएं, तरंगित रेखाएं होती हैं। बिंदुओं को मिलाकर भी रंगोली बनाई जाती है। यह रंगोली सीखने का सबसे पुराना तरीका है। पुष्प की आकृतियाँ सामाजिक और धार्मिक पर्वों एवं जादू टोनों से जुड़ी हैं। ज्यामितीय आकृतियाँ तंत्र-मंत्र एवं तांत्रिक रहस्यों से जुड़ी मानी जाती हैं। स्वास्तिक हमेशा बनाया जाता है।

भारतीय परंपराओं में हर कार्य या अनुष्ठान के साथ कुछ मान्यताएँ जुड़ी रहती हैं। रंगोली के साथ भी क्षेत्र, राज्य और धर्म के अनुसार कुछ प्रचलित मान्यताएँ हैं। हिंदू धार्मिक मान्यता के अनुसार, रंगोली की आकृतियाँ घर से बुरी आत्माओं और दोषों को दूर करती हैं। सुंदर रंगोली घर में खुशहाली, सुख और समृद्धि लाती है। कुछ क्षेत्रों में रंगोली बनाते हुए कन्याएँ लोकगीत भी गाती हैं। रंगोली नकारात्मक ऊर्जा को मार्ग में ही रोक देती है और घर की सकारात्मक ऊर्जा को बाहर नहीं निकलने देती।

रंगोली के साथ कुछ और लोक कथाएँ भी जुड़ी हैं। भारत के दक्षिणी राज्य तमिलनाडु में यह माना जाता है कि पूज्यनीय देवी (माँ थिरूमल) का विवाह मार्गा जी महीने में हुआ था। इसीलिए इस पूरे माह कन्याएँ सुबह उठकर स्नान कर रंगोली बनाती हैं। दक्षिण भारत में रंगोली को “कोलम” कहते हैं। इसके लिए चावल के आटे का घोल इस्तेमाल किया जाता है। इसके पीछे यह मान्यता है कि चींटी को भी खाना खिलाना चाहिए। माना जाता है कि कोलम के बहाने प्रत्येक जीव-जन्तु को भोजन मिलता है, जिससे प्राकृतिक चक्र की वृद्धि और रक्षा होती है।

पुरानी कथा यह भी है कि एक बार राजा चित्रलक्षण के दरबार में उनके जाने-माने पुरोहित के पुत्र का अचानक देहांत हो गया। पुरोहित अत्यंत दुखी हुए। उनके दुख को कम करने के लिए राजा ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की। ब्रह्मा जी आए और जिस पुत्र की मृत्यु हुई थी, दीवार पर उसका चित्र बनाने के लिए कहा। ब्रह्मा जी के कथनानुसार चित्र बनाया गया और देखते ही देखते वह पुत्र जीवित हो गया।

एक अन्य कथा में ब्रह्मा जी ने सृजन के उन्माद में आम के पेड़ से रस निकालकर उसी से जमीन पर एक स्त्री की आकृति बनाई, जो अप्सराओं से भी सुंदर थी। बाद में वही उर्वशी कहलायी। ब्रह्मा जी द्वारा खींची गई यह आकृति रंगोली का प्रथम रूप मानी जाती है। इसी प्रकार, लंकेश का वध करके चौदह सालों बाद जब श्री राम, लक्ष्मण और सीता जी वापस लौटे, तो अयोध्या के नगरवासियों ने अपने घर-आँगन रंगोली से सजाए। सीता के विवाह के अवसर पर भी सम्पूर्ण नगर रंगोली से सजाया गया था। दिवाली और रंगोली का तो अटूट नाता है। रंगोली के साथ लक्ष्मी जी के चित्र और पग-चिन्ह भी बनाए जाते हैं। रंगोली का एक और नाम है "अरिपन रंगोली"। यह बिहार की लोक चित्रकला है। अरिपन मिथिला कला का एक रूप है। हर उत्सव, त्योहार में आँगन और दीवारों पर मधुबनी चित्रकारी बनाने की पुरानी प्रथा है। इसमें मुख्यतः रामायण और महाभारत की छवियाँ होती हैं।

उत्तराखंड में रंगोली को "ऐपण रंगोली" कहते हैं। "ऐपण" कुमाऊँ की पारंपरिक प्रथा है। यह पूजा के स्थान, घरों के प्रवेश द्वार, दीवारों को सजाने के लिए बनाई जाती है। ऐपण के डिजाइन पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित किए जाते हैं। इसका सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व है।इसी तरह, राजस्थान, मालवा और निमाड़ क्षेत्र में रंगोली का एक रूप "मांड़ना" भी है। मांडना "मंडन" शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है सजाना। मांडने को विभिन्न उत्सव और ऋतुओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

चतुर्भुज आकृति का चौक मांडना समृद्धि के लिए किया जाता है। त्रिभुज, वृत्त, शतरंज का पट और स्वास्तिक लगभग हर उत्सव और पर्व पर बनाया जाता है। रंगोली की लोक परंपराएँ, कथाएँ, मान्यताएँ चाहे थोड़ी बहुत भिन्न हों, पर अंतर्निहित तरंग एक ही है—उत्साह, आनंद, पवित्रता और सकारात्मक ऊर्जा का सम्पूर्ण पृथ्वी पर साम्राज्य। पौराणिक कथाएँ, मान्यताएँ, धार्मिक-सामाजिक महत्व और घर-परिवार को सकारात्मक ऊर्जा से सराबोर करने के लिए रंगोली आज भी अपना वर्चस्व बनाए हुए है आधुनिक युग में रूप बदल गया है। कुछ नवीनीकरण हो गया है—ट्यूब कलर, प्लास्टिक के स्टीकर, साँचे, छलनी में डिजाइन, रंगोली के लिए कट-आउट, लकड़ी के बेलनाकार साँचे, रंगीन पेन आदि। यानि कि मशीनी युग में सबकुछ तेज। पर संतोष इस बात से है कि नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी का अनुसरण कर रही है, बस तरीका नया है।

नयी रंगोली पद्धति चाहे जो हो, आकार प्रकार, फूल-पतियाँ वही हैं। उत्साह भी चौगुना है। हमारी सांस्कृतिक जड़ें गहरी हैं और विश्वास है कि सदा पल्लवित-पुष्पित रहेंगी।
हम फिर गुनगुना सकते हैं— "रंगोली सजाओ रे...."

•••

तन्हा जीना सीख गई

कविता:- मीनू सिंह

ज़ख्मों को सीकर अपने
अश्कों को पीना सीख गई
वक्त लगा हैं माना बेशक पर
वो धीरे धीरे सहना सीख गई
मोम सी नाजुक थी वो कभी
हर सांचे में ढलना सीख गई
अधरों पर रख कर मौन सदा
देखो वो चुप रहना सीख गई
चुभती थी जिनकी आंखों में
उनसे ओझल होना सीख गई
मुश्किल तो था लेकिन वो
नामुमकिन को मुमकिन करना सीख गई
दर्द हुआ है पल पल लेकिन
हालातों से लड़ना सीख गई
लगता है अब तो देखो
मीनू तन्हा जीना सीख गई

•••

सृजन की चोरी

संस्मरण:- श्वेता सिंह

यह बात उन दिनों की है जब मैं एक छोटे से शहर में रहती थी। वहां एक चित्रकला प्रतियोगिता हुई। हमारे स्कूल का एक लड़का था राजू - जो मेरे साथ मेरे ही स्कूल में पढ़ता था, जो ज़्यादा बोलता नहीं था, पर उसकी आंखों में कुछ कहने की चाह हमेशा दिखती थी। जब वह काग़ज़ और रंगों के सामने बैठता, तो उसकी चुप्पी बोल उठती थी। उसने भी इस प्रतियोगिता में भाग लिया था। प्रतियोगिता के दिन सब बच्चे रंग-बिरंगे चित्र बना रहे थे। कुछ ने पुराने किताबों से डिज़ाइन नकल किए, कुछ ने एक-दूसरे की कॉपी की। लेकिन राजू ने एक कोने में बैठकर कुछ अलग ही बनाया — एक बूढ़ी औरत का चेहरा, जिसकी आंखें आसमान की ओर थीं और उनके नीचे एक छोटी बच्ची हंस रही थी। रंग साधारण थे, लेकिन चित्र में एक भाव था, जो हर देखने वाले को कुछ देर सोचने पर मजबूर कर देता था।

जब परिणाम घोषित हुए, तो किसी और को पहला पुरस्कार मिला। एक ऐसा चित्र जो तकनीकी रूप से सुंदर था, पर किताब से हूबहू उतारा गया था। राजू को कोई पुरस्कार नहीं मिला। इससे राजू को कैसा लगा मुझे नहीं पता पर मुझे बहुत बड़ा लगा, मेरी चित्रकला पुरस्कार पाने के लायक नहीं बनी थी पर राजू को मिलनी चाहिए थी। वो चुपचाप अपना चित्र समेटकर चला गया। कई साल बाद, मैं एक कला प्रदर्शनी में गई, वहां एक कोने में एक चित्र टंगा था — हूबहू वैसा ही जैसा राजू ने सालों पहले बनाया था, लेकिन अब और भी परिपक्व। नीचे नाम लिखा था: RAJU KUMAR, Expressionist Artist। बरबस मैं मन ही मन मुस्कुरा रही थी। उस दिन समझ आया सृजन की चोरी लाख हो सकती है, पर भाव संग हुनर की नकल कोई नहीं कर सकता।

•••

सुबह की चाय

कविता:- मुकेश कुमार बिस्सा

खिड़की से छनकर आती धूप,
पंछियों की किलकारी,
नींद की आख़िरी चादर ओढ़े
थकन से बोझिल आँखें,
और उसी पल
रसोई से उठती भाप की महक—
हाँ, यही है सुबह की चाय।
हल्की-सी चुस्की,
मानो रगों में दौड़ती नई ऊर्जा,
सर्द हवाओं में
गर्माहट का पहला पैग़ाम,
कल की थकान को धोकर
आज की उम्मीद जगाती—
यही तो है सुबह की चाय।
कभी अकेले किताब के संग,
कभी अख़बार के पन्नों के बीच,
कभी माँ की मीठी झिड़की के साथ,
तो कभी दोस्तों की हँसी-ठिठोली में—
हर रिश्ते को बाँधती,
हर दिल को छूती,
यही तो है सुबह की चाय।
ज़िंदगी की आपाधापी से पहले,
रोज़मर्रा की जद्दोजहद से पहले,
थोड़ा ठहरने, मुस्कुराने
और साँसों को सुकून देने का बहाना है—
सुबह की चाय।

•••

क़लम की व्यथा

कविता:- शिखा खुराना 'कुमुदिनी'

कलम और कागज़ रोज़ रोते दिखते हैं आजकल।
लिखावट भी भूले गये हैं सब,
और पढ़ते भी हैं तो गूगल।

किताबों का ज़माना बीत रहा है,
बुजुर्ग हुई हैं डायरियां।
उत्सव इंटरनेट पर मनाते हैं,
आनलाईन निभाते हैं यारियां।

लिखा करते थे जो चिट्ठी, बातें करती थीं उंगलियां।,
ईमेल में कहां वो मर्म शब्दों का भावों में कहां वो ऊष्मता।

स्क्रीन की रोशनी से अब आंखें उनींदी सी हुई रहती हैं।
संवेदनाएं सब मन की गुम होकर इमोजी सी हुई रहती हैं।

तकनीक ने नज़दीकियां दीं मगर दूरी भी बढ़ा दी है।
दिल से दिल की मर्माहट को इंटरनेट ने सज़ा दी है।

चलो लिखते हैं फिर डायरियां, क़लम से जज़्बात उतारते हैं।
दिल की बात सुनते हैं, शब्दों में खुद को संवारते हैं।

भावों को लफ्ज़ देते हैं, दिलों में जज़्बात उतारते हैं।
चलो लिखते हैं एहसासों, को अपना हुनर निखारते हैं।

एक यात्रा

हर स्मृति हमारे जीवन की एक अनमोल यात्रा है। बीते पलों की छोटी–छोटी झलकियाँ, खुशियाँ और भावनाएँ हमारे मन और हृदय में गहराई से उतर जाती हैं। ये स्मृतियाँ न केवल हमें हमारी पहचान याद दिलाती हैं, बल्कि जीवन को महसूस करने और समझने की शक्ति भी देती हैं। हर याद का अपना रंग, अपना एहसास है, जो हमें समय के साथ भी हमेशा जीता रहता है।

वेब पत्रिका

अनुभव

hindilekhak.com

अक्टूबर २०२५